चण्डी

कौल-कल्पतरु

ॐ ह्रीं

सिद्ध सारस्वत स्तोत्र

शिव शत - नाम

(सम्पूर्ण विधि - सहित)

श्रीकाली-कल्पतरु

श्रीकाली-तत्त्व-दर्शन, श्रीकाली-माहात्म्य, श्रीकाली-पूजा-विधि सहित

५०-००/ सजिल्द ६०-००

बाबाश्री एक अवतारी महा - पुरुष थे । उनका जन्म इस पवित्र भूमि में किसी विशेष उद्देश्य से हुआ था । उनका अपनी मातृ - भूमि से गहरा अनुराग था । वे उसके लिए जीवित रहे और उसी के लिए उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग भी किया और यह सब किया उन्होंने - एकान्त में रहकर गुप - चुप ही । किसी को कानों - कान तक खबर न होने दी । केवल, उनके इने - गिने विश्वास - पात्र भक्त ही उनके कार्य - कलापों को जान पाते थे ।

बाबा जी एक सिद्ध शाक्त, योगि - राज, तन्त्र - सिद्ध, तत्व - दर्शी, कुलाचारी, परम उदार, नीति - निपुण, दयालु एवं व्यवहार - कुशल महात्मा थे । उन्होंने दशों महा - विद्याओं की तथा उनके सम्बन्ध की नाना देवी - देवताओं की साधनाएँ करके अन्त में अघोर की सिद्धि - लाभ की थी ।

बाबा जी की रचनाएँ गम्भीर दृष्टि से ओत - प्रोत हैं । उनकी रचनाएँ काव्य - रस की व्यञ्जना से परिपूर्ण हैं तथा भक्त - जनों के मन को सरस भावना से अभिभूत करने की क्षमता रखती हैं । भक्त - जनों के मन, पूज्य बाबाश्री द्वारा विरचित गद्य या पद्य या निबन्ध के श्रवण या दर्शन - मात्र से जिस भाव से भर उठते हैं, उसका अनुभव 'बाबाश्री चरितामृत' नामक रचना - संग्रह को पढ़कर कोई भी पाठक हृदयङ्गम कर सकता है । इस रचना - संग्रह में जो भी डुबकी लगाएगा, उसका हृदय निस्सन्देह परमानन्द की उपलब्धि करेगा । मूल्य तीस रुपए ।

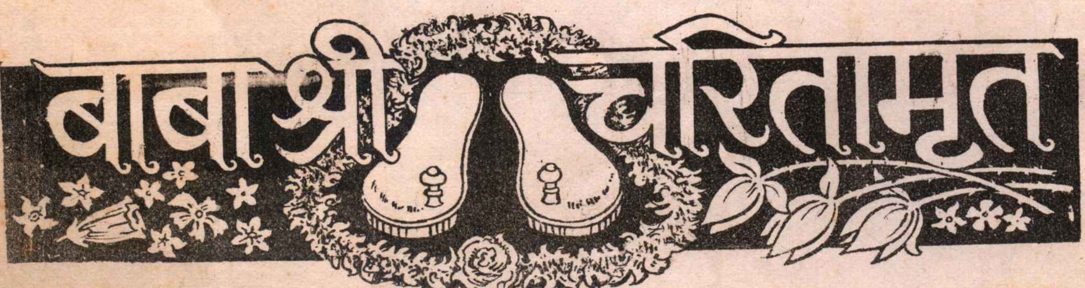

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

वर्ष ५१] [अङ्क ११
माघ, 'पार्थिव' सम्वत् २०४९ वि० फरवरी, १९९३

इस अंक में

- वेद-वर्णित महा-सरस्वती तत्त्व का रहस्य ... ३२३
- महा-शिव-रात्रि ... ३२५
- भारत के द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग ... ३२७
- 'आदि शक्ति-पीठ' रजरप्पा ... ३३२
- तारा-साधना ... ३३४
- पञ्चाग्नि-तपस्या ... ३३६
- **साधन-माला** ... ३४१

कौल-कल्पतरु चण्डी

मासिक पत्रिका
का

५२ वाँ वर्ष

(अप्रैल, १९९३ से मार्च, १९९४)

श्री जगदम्बा की असीम अनुकम्पा से **'चण्डी'** का ५२ वाँ वर्ष चैत्र शुक्लाष्टमी २०५० वि०—अप्रैल, १९९३ से प्रारम्भ हो रहा है।

'चण्डी' के ५२ वें वर्ष में गत-वर्ष की भाँति, हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया - पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति का एक और प्रयास होने जा रहा है, जिससे सम्पूर्ण **'साधक - समाज'** लाभान्वित होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष में **साधन - माला** नामक नवीन स्तम्भ प्रारम्भ हुआ। इस स्तम्भ के द्वारा लगभग १०० प्रयोग **'चण्डी'** के ५१ वें वर्ष में प्रकाशित हुए। पाठकों की माँग पर, 'चण्डी' के ५२ वें वर्ष में भी इस स्तम्भ का प्रकाशन होगा। साथ ही, **यन्त्र - साधना** विषयक सचित्र वर्णन अलग से नियमित रूप से प्रति - मास प्रस्तुत होगा।

'चण्डी'

५२ वर्ष

का

सदस्यता-शुल्क

धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा

शीघ्र-से-शीघ्र

भेजने की कृपा करेंगे

अथवा

कार्यालय द्वारा प्रेषित

वी० पी० स्वीकार करेंगे

मन्त्र, तन्त्र, योग
शक्ति उपासना
प्रकाश डालने वाली
एकमात्र मासिक पत्रिका
चण्डी कार्यालय
चण्डी
अल्लापुर बाग, इलाहाबाद-२११००६

'चण्डी' के ५२ वें वर्ष में प्रत्येक सामान्य अङ्क, गत वर्ष के ३६ पृष्ठों की अपेक्षा, ४० पृष्ठों का होगा। इस प्रकार पिछले वर्ष के ३६२ पृष्ठों की अपेक्षा नए ५२ वें वर्ष में कुल ४८० पृष्ठों का साहित्य प्रकाशित होगा, जिस में लगभग १०० पृष्ठ सचित्र होंगे।

वार्षिक मूल्य

'चण्डी' के ५२ वें वर्ष के एक अङ्क का मूल्य ६-०० रु० होगा तथा १२ अङ्कों का वार्षिक मूल्य ६५-०० रु० होगा।

(क) जो बन्धु, मनीआर्डर द्वारा **'चण्डी'** के ५२ वें वर्ष का **वार्षिक मूल्य** ६५.०० रु० हमारे पास १५ **मार्च**, १६६३ तक भेज देंगे, उनकी सेवा में **मार्च, ६३ + अप्रैल ६३** के दो सामान्य अङ्क २० **मार्च, १६६३** को **साधारण डाक** से भेजे जाएँगे। जिन बन्धुओं को साधारण डाक से अङ्क नहीं जाता है, उन्हें डाक-व्यय की वी० पी० द्वारा वे भेजे जाएँगे। इसी प्रकार आगे भी अङ्क भेजे जाएँगे।

(ख) जो बन्धु, मनीआर्डर द्वारा **'चण्डी'** के ५२ वें वर्ष का **वार्षिक मूल्य** ६५.०० रु० नहीं भेजेगे, उनकी सेवा में **मार्च, ६३ + अप्रैल, ६३** के दो सामान्य अङ्क, **अर्द्ध-वार्षिक मूल्य** ३५.०० + **डाक-व्यय** ५.०० = ४०.०० **रु० की वी० पी०** द्वारा २० **मार्च, ६३** को भेजे जाएँगे। तथा **मई, ६३** का अङ्क, **शेष वार्षिक मूल्य** ३०.०० + **वी. पी. व्यय** ५.०० = ३५.०० **रु० की वी० पी०** से २५ **अप्रैल, ६३** को भेजा जाएगा। इससे डाक-व्यय की बचत होगी, अङ्क सुरक्षित प्राप्त हो जाएँगे तथा हमें शुल्क भी प्राप्त हो जाएगा।

विशेषाङ्क-योजना

'चण्डी' के ५२ वें वर्ष में विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत **शाबर मन्त्र संग्रह, भाग ४, सार्थ सौन्दर्य - लहरी** आदि पुस्तकें प्रकाशित होंगी। अभी 'चण्डी' के ५१ वें वर्ष के अन्तिम विशेषाङ्क **हिन्दी तन्त्रसार** का कार्य चल रहा है। यह वृहत् ग्रन्थ (लगभग ४०० पृष्ठ) के रूप में प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि **अप्रैल, ६३** तक यह प्रकाशित हो जाएगा। अतः **'चण्डी'** के **जून, ६३** सामान्य अङ्क के साथ यह २० **मई, ६३** को सभी **विशेषाङ्क-योजना** के सदस्यों को **वी० पी०** द्वारा भेजा जाएगा।

'चण्डी' के ५२ वें वर्ष का पहला विशेषाङ्क **शाबर-मन्त्र-संग्रह, भाग ४** सभी सदस्यों की सेवा में २० **जून, ६३** को सामान्य अङ्क **जुलाई, ६३** के साथ **वी० पी०** द्वारा भेजा जाएगा। साथ में 'चण्डी' के सामान्य अङ्क भी भेजे जाएँगे।

आशा है कि सभी बन्धु हमारी इस योजना को स्वीकार करेंगे। यदि किसी बन्धु को इस योजना द्वारा कोई असुविधा हो, तो कृपया हमें लिखने की कृपा करेंगे।

वेद-वर्णित महा-सरस्वती तत्त्व का रहस्य

—श्री वल्लभदास बिन्नानी 'ब्रजेश', कलकत्ता (बंगाल)

ऐऽम्बि - तमे नदी - तमे, देवी - तमे सरस्वति ! अप्रशस्ता इव स्मसि, प्रशस्तिमम्ब ! नस्कृधि ।।

अर्थात् 'मातृ-गणों में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, देवियों में श्रेष्ठ हे महा-सरस्वति ! हम अप्रशस्त के समान अर्थात् धनाभाव में असमृद्ध-वत् हो रहे हैं। अतएव हे माता ! हमें प्रशस्ति अर्थात् धन-सम्पत्ति प्रदान करो।'

उक्त मन्त्र में सरस्वती को 'अम्बि - तमा', 'नदी - तमा' तथा 'देवी-तमा'—इन तीन नामों से सम्बोधित किया गया है। अतः पहले मातृ-भाव, फिर नदी-भाव और देवी-भाव-इन तीन भावों के तत्त्व का विचार करना होगा।

अम्बि-तमे—'अम्बा' शब्द का अर्थ है माता। **'अम्बि - तमा'** का अर्थ है मातृ - तमा। अखिल विश्व में जितनी मातृ-शक्तियाँ हैं, उन सबमें तुम श्रेष्ठ हो। मातृ-भाव किसे कहते हैं ? जो रक्षा करती है, वही माता है। 'मा'-धातु का एक और अर्थ है-'शब्द करना'। 'परिमाण करना' भी उसका अन्य अर्थ है। तुम्हारे जैसी मातृ-शक्ति दूसरी कोई भी नहीं है क्योंकि ज्ञान-रूप में तुम्हीं सबका पालन करती हो। 'ज्ञान' की अपेक्षा अधिक रक्षा करनेवाली शक्ति किसी दूसरे में नहीं होती। 'ज्ञान' ही जीवन है। अज्ञान से नाश ही होता है।

नदी-तमे—जितनी नदियाँ हैं, उनमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो। नदी-रूपा सरस्वती का 'आधि - भौतिक' भाव जल-रूपा सरस्वती नदी है, जो प्रयाग-राज में गङ्गा और यमुना के साथ मिलती है। इस सङ्गम को 'त्रिवेणी-सङ्गम' कहते हैं। यह 'आधि-भौतिक' त्रिवेणी अन्य 'आधि - भौतिक' तीर्थों में श्रेष्ठ है। नदी-रूपा सरस्वती का 'आध्यात्मिक' भाव है सुषुम्णा नाड़ी, जो इडा और पिङ्गला के मध्य में अवस्थान करती है तथा मूलाधार में दोनों के साथ युक्त है। यह 'आध्यात्मिक' त्रिवेणी है।

'नदी' शब्द 'नद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—'शब्द करना'। जहाँ मति है, वहाँ शब्द है। 'नदी' शब्द के उच्चारण से पर्वतादि से निकलकर अन्त में समुद्र में या अन्य किसी बड़ी नदी में मिलनेवाली सरिताओं का ही बोध होता है। अतः यहाँ **'नदी-तमा'** शब्द के द्वारा नाद-विशिष्टा चलनात्मिका 'शब्द-ब्रह्म-मयी' ही विशेषतः लक्षित होती है। नदी का जो आश्रय ग्रहण करता है, वह अन्त में समुद्र में जा पहुँचता है। इसी प्रकार जो शब्द-ब्रह्म (वेद) का आश्रय लेता है, वह अन्त में पर-ब्रह्म को प्राप्त होता है।

देवी-तमे—देवियों के मध्य तुम्हीं श्रेष्ठ हो। तुम उज्ज्वल हो, ज्योतिर्मयी हो। तुम्हीं ब्रह्म-स्वरूपा हो। तुम्हें ब्रह्म-रूप में जो ध्यान कर सकता है, वही तुम्हें यथार्थ-रूप से जान सकता है। 'दिव्' धातु का अर्थ है—ज्योति, प्रकाश, आलोक। अन्धकार दूर करके आलोक प्रदान करनेवाली जितनी शक्तियाँ जगत् में हैं, उन सबमें तुम श्रेष्ठ हो।

सरस्वति—'सृ' धातु के आगे 'असुन्' - प्रत्यय लगाने से 'सरस्' पद सिद्ध होता है। 'सरस्' जिनका है, जो 'सरस्' की अधिष्ठात्री देवी हैं, वही **'सरस्वती'** हैं। 'सृ' धातु का अर्थ है गति। जहाँ कोई बाधा उपस्थित होकर रुकावट करती है, वहाँ गति प्रवर्तित नहीं हो सकती। गति होने के लिए वहाँ

बाधा होना उचित नहीं है। गति का जहाँ अवरोध होता है, वहाँ अन्धकार होता है। विज्ञान भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उस गति की जो अधिष्ठात्री देवता है, जिससे समस्त गतियाँ प्रवर्तित होती हैं, सब कुछ प्रकाशित होता है, अज्ञान दूर होता है, ज्ञान का विकास होता है—वह **'सरस्वती'** है। गद्य-पद्यादि-रूप में जगत् में जिसका अर्थात् 'वाक्' या 'शब्द' का प्रसारण ('सृ' - धातु) होता है, वह **'सरस्वती'** है। जहाँ छन्द है, वही गति **'सरस्वती'** का रूप है। जहाँ छन्द नहीं, वहाँ अज्ञान का रूप है।

यही **'सरस्वती'** मातृ-रूप में, नदी-रूप में तथा देवता-रूप में नित्य हमारी बुद्धि का विषय बन रही है। यही मातृ-श्रेष्ठा **'सरस्वती'** वाग्-देवी हैं; वाक्य की देवता हैं तथा शब्द - ब्रह्मात्मिका मातृका-स्वरूपिणी हैं। ब्रह्म-ज्ञान भी वही हैं। परमार्थतः वे ब्रह्म-स्वरूपिणी चिन्मयी हैं। वह 'नदी'---अखिल जगत् की नाद-स्वरूपिणी हैं। जो परमाणुओं का स्पन्द है, वह भी उन्हीं की क्रिया है। वायु का स्पन्दन भी उन्हीं की क्रिया है। जगत् के अन्तर्बाह्य में स्थित होकर वे ज्ञान देती हैं।

अप्रशस्ता इव स्मसि, प्रशस्तिमम्ब ! नस्कृधि···

धन के अभाव से ही मनुष्य संकुचित होता है। ज्ञान-धन, विद्या-धन इत्यादि के अभाव में हम सङ्कीर्ण, शीर्ण हो गए हैं। प्रकाश का जहाँ अभाव है, वहीं सङ्कोच है। गति जहाँ स्वच्छन्द प्रवाहित नहीं होती, वहीं सङ्कोच-अवरोध-अन्धकार-दुःख है। ज्ञेय के स्वरूप को जानने के लिए हमारे मार्ग में जो बाधा है, उसे कौन दूर करेगा ? तुम्हीं दूर कर सकती हो।

सत्-चित् और आनन्द की प्रसारणी शक्ति जो है, वह 'सरस्वती' है। तुम हमारे प्रसारण की बाधा को दूर करके, हमारे अभाव को मिटा करके, सम्यक् प्रकाश प्रदान करके हमें समृद्धि प्रदान करो। हमें जिसकी आवश्यकता है; जिससे हम प्रशस्त हो सकते हैं; विशालता प्राप्त कर सकते हैं—तुम वही हमें प्रदान करो।

'ब्रह्म' का अर्थ वृहद् है। अपरिच्छिन्नता ही हमारी सहज अवस्था है। अपरिच्छिन्नता प्राप्त करना ही पूर्ण सुख है। जिस शक्ति के द्वारा हम परिच्छिन्न होते हैं, वह 'माया' या 'अविद्या' है। हम जो अल्प-देश-व्यापी बने रहते हैं, अज्ञानाच्छादित हुए रहते हैं, निरानन्द रहते हैं, इसका कारण 'माया' या 'अविद्या' ही है। इसीलिए विद्या के द्वारा हमारे परिच्छेद को दूर कर दो। हमारे अभाव, मलिनता, अविद्या तिरोहित हों। हमें सब विषयों में व्यापक कर दो। हमारा चित् प्रसारित हो, हमारा आनन्द प्रसारित हो।

जहाँ प्रसार नहीं है, वहीं क्लेश है। प्रकाश के अभाव में हमारा मन संकुचित हो जाता है। इसी कारण पर-दुःख देखकर हम कातर नहीं होते। आत्मा जिस परिमाण में 'अप्रशस्त' रहता है, उसी परिमाण में वह ब्रह्म-भाव से दूर रहता है। **'सरस्वती'** ही प्रसारण की बाधा दूर करती है। गति को प्रवर्तित कर देती है—'सृ'-धातु का अर्थ ही है प्रसारण, गति।

अखिल जगत् में जो कुछ है, वह सब 'नाद' या 'शब्द' से ही हुआ है। अतएव वाक्य की जो अधिष्ठात्री देवता है, वह सबके लिए उपास्य है। इसी कारण ब्रह्मा, शङ्कर प्रभृति सभी देवताओं ने माँ की ही उपासना करके विद्या-लाभ किया था।

उक्त श्लोक-रूपी मन्त्र के पूर्व **'ऐं'-वीज** लगा हुआ है। यह **'वाग्-वीज'** या **'गुरु-वीज'** कहलाता है। माँ विश्व की गुरु-स्वरूपिणी हैं। माँ चिद्-रूपा ब्रह्म-रूपिणी हैं। ज्ञान-मय परमात्मा के सिवा ज्ञान देने की शक्ति और किसी में नहीं है। माँ ब्रह्मादि की भी गुरु है। **'ऐं'**—अर्थात् सरस्वती का वीजाक्षर। **इस एकाक्षर 'वीज-मन्त्र'** के जप से अज्ञानता दूर होती है और माँ की कृपा प्राप्त होती है।

महा-शिव-रात्रि

—'कुल-वाणी-रत्न' श्री अमरसिंह 'अमर'

[अवकाश-प्राप्त लेखाधिकारी के हृदय में आध्यात्मिक रहस्यों को उद्घाटित करने की काव्यात्मक कला की धारा भी प्रवाहित हो सकती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है प्रस्तुत आलेख। 'कुलवाणी-रत्न' श्री अमर सिंह जी ने 'महा-शिव-रात्रि' के माध्यम से कितने ही गूढ़ एवं रहस्य-पूर्ण तत्त्वों को सहज भाव से इस निबन्ध में सभी के लिए सहज बोध - गम्य बना दिया है। आवश्यकता केवल इतनी है कि प्रत्येक 'शब्द' एवं 'वाक्य' को समझते हुए पाठक बन्धु एकाग्र-मन से इसे पढ़ें। वे स्वयं उक्त कथन की सत्यता को अनुभव कर लेंगे।—सं०]

प्राणे निविष्टौ वै रुद्रस्तस्मात् प्राण-मयः स्वयम्।
प्राणाय चैव रुद्राय, जुहोत्यमृतमुत्तमम्॥—लिङ्ग-पुराण, १/८८/६६

तत्व की दृष्टि से अग्नि, प्राण तथा रुद्र एक दूसरे के पर्याय हैं। जैसे 'अग्नि' के घोर और अघोर, 'प्राण' के शान्त और कुपित दो शरीर हैं, वैसे ही शङ्कर के भी 'रुद्र' एवं 'शिव' दो रूप हैं। वस्तुतः इस प्रकार के द्वन्द्व-भाव के वितान बिना इस असीम ब्रह्माण्ड के निर्माण की कल्पना ही असम्भव है—नियमन, नियन्त्रण तो और भी अधिक। 'ऋग्वेद' में आपोभूयिष्ठ तथा अग्निभूयिष्ठ—शीतल और ऊष्म, जिन दो परस्पर-विरोधी मूल धाराओं द्वारा सृष्टि की रचना होना कहा गया है, वह इस अपवाद-रहित द्वन्द्व-सिद्धान्त पर ही आधारित है, जिसे 'युग्म' कहना सत्य के अधिक समीप होगा।

आवश्यकतानुसार सृष्टि के नियामक बन्धेजों का उल्लङ्घन होने पर शान्त 'शिव' अग्नि की ही भाँति 'रौद्र'-रूप—'घोर' बन जाते हैं। ऐसे में इस द्वन्द्वात्मक सृष्टि के ताने-बाने में गुँथा प्राणी यदि शङ्कर के 'रुद्र'-रूप को नहीं पहचानता, तो वह उनके 'शिव - रूप' का समाराधन भी संयत रूप से नहीं कर सकता। अशिव, अमङ्गल के निवारण से ही मङ्गलकारी शिव का आगमन होता है—यह निर्विवाद सत्य है।

शिव के तृतीय-नेत्रीय 'रौद्र'-रूप ने वस्तुतः स्मर को भस्म नहीं किया, उसे अमरत्व प्रदान कर दिया—उसे पूर्ण प्रभावी, स्थायी स्थिति प्रदान कर दी। जब वह साकार, प्रत्यक्ष था—तब तो उसका क्रिया-प्रभाव सीमित था, परन्तु औघड़-दानी भगवान् 'शिव' की अनुकम्पा से वही अनङ्ग अशरीरी शरीर प्राप्त कर समस्त रूप-धारियों—थल-चर, नभ-चर, जल-चर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति—सभी का एक-छत्र नियन्त्रक-शासक बन बैठा—असीम शक्ति का सर्व-व्यापी स्वामी! विनाश-कारी 'रुद्र' में अन्तर्हित 'शिवत्व' की यह अमर कथा है।

प्रलय की विभीषिका भी नवीन सुन्दर, समृद्ध सृष्टि को ऐसे ही जन्म देती है। अतः 'रुद्र-तत्त्व' मङ्गल का प्रतीक है—'शिव' से अभिन्न। 'रुद्रत्व' को 'शिवत्व' से अलग रखकर देखा जाना ही असम्भव है। इसीलिए **'महा-शिव-रात्रि पर्व'**, जो वस्तुतः भगवान् रुद्र का प्राकट्य दिवस है, उसका नाम 'शिव'-सूचक पड़ा।

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को भगवान् शङ्कर 'रुद्र' रूप में प्रकट हुए थे। रात्रि को महत्ता इस-लिए मिली कि उनका प्राकट्य मध्य-रात्रि में हुआ था। प्रलय के समय इसी दिन प्रदोष-काल में प्रलय-

ङ्कर अपना त्रिशूल ले ताण्डव नृत्य करते हैं और समस्त ब्रह्माण्ड को तृतीय नेत्र की ज्वाला से भस्म कर डालते हैं। इसे ही **'काल रात्रि'** कहा जाता है।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को **'शिव-रात्रि व्रत'** मनाया जाता है। यदि **चतुर्दशी** में ही व्रत तथा **चतुर्दशी** में ही पारण मिलता हो, तो अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण योग समझना चाहिए। यद्यपि वर्ष के सभी मासों की कृष्ण-पक्ष की त्रयोदशी 'शिव-रात्रि' के रूप में प्रतिष्ठित है, फाल्गुन मास की 'शिव - रात्रि' **महा-शिव-रात्रि** है।

इस महान् पर्व की प्रधान क्रियाएँ हैं—१ उपवास, २ शिव-पूजन और ३ रात्रि-जागरण। यथा-शक्ति, यथा-सम्भव आठों प्रहर का उपवास; सन्ध्या - काल में पुनः स्नान, भस्म, रुद्राक्ष - धारण; मन्दिर अथवा अन्य सु-स्थान में स्थापित पार्थिव शिव-लिङ्ग का सन्ध्या, अर्द्ध-रात्रि और तृतीय प्रहर में—प्रदोष-काल में भी, बार-बार अभिषेक तथा विधि-पूर्वक क्रम से दूध, दही, घी और मधु से स्नान एवं केतकी-पुष्प और अक्षत बेल-पत्रों द्वारा पूजन। साधारणतया लोग धतूर पुष्पों और फलों, मदार के श्वेत, नील-पुष्पों, बिल्व-पत्रों, बिल्व-फलों, बेर आदि द्वारा दिवा-काल में ही पूजन करते हैं, पर निशा-पूजन अधिक प्रशस्त है। अतएव सन्ध्या-काल से ही पूजन आरम्भ होना महत्त्व-पूर्ण है। पूजन यदि 'अघोर-पद्धति' से हो, तो और भी अच्छा।

स्मरण रहे कि इस व्रत में 'उपवास' ही, जिसे साधारणतया व्रत का पर्याय माना जाता है, पर्याप्त नहीं है। व्रत-शीलता एक विशद सन्दर्भ है, जिसमें उपवास, सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह, शारीरिक एवं मानसिक ब्रह्मचर्य, यथा-सम्भव एकान्त-सेवन एवं मौन रहकर चिन्तन, मनन, अस्तेय, शौच आदि समस्त संयम-नियम सम्मिलित हैं।

ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी वर्ण और आश्रम के लोग **'महा-शिव-रात्रि'** का यह व्रत और पूजन करने के अधिकारी हैं। इसमें शैव, शाक्त, स्मार्त्त, वैष्णव, गाणपत्य, सौर प्रभृति किसी सम्प्रदाय का भेद नहीं। भगवान् शङ्कर यदि शैवों के इष्ट और शाक्तों के आगम-गुरु-तत्त्व हैं, तो वैष्णवों के भी परमाचार्य हैं। **'महा-शिव-रात्रि'** का यह पूजन सकाम और निष्काम दोनों भावों से होता है।

गरल-पायी, नाग-भूषण, योगेश्वर शिव श्मशान में पिशाचों से घिरे, त्रिभुवन-सुन्दरी गौरी को अर्द्धाङ्गी बनाए साम्य-स्थिति के अटुट-स्वरूप हैं। शीश पर शीतल गङ्गा, तो भाल में तृतीय नेत्र की अग्नि-ज्वाला; मस्तक पर सुधाकर, तो कण्ठ में गरल; भस्माभिभूत धूसरित रूप, पर समस्त ऋद्धि-सिद्धियों के दाता–प्रलयङ्कर **'रुद्रत्व'** का ताण्डव और **'शिवत्व'** का लास्य ! प्रत्येक दशा में साम्य-स्थिति। उनका पूजन, उपासना, साधना भोग-मोक्ष-प्रदायक है।

सहित 'इ'-कार शिव-रूपे, हों यह प्राण रमे, रते। (शिवः सर्वस्य कर्त्तयं, शक्तिः कारणमुच्यते।)

भारत के द्वादश ज्योर्तिलिंग

श्री विपिनविहारी शरण, कुमुद प्रीता ट्रस्ट, रज-रप्पा, हजारीबाग (बिहार)

हमारे देश में देवताओं की संख्या असंख्य है। देवताओं का सम्बन्ध निराकार पर-ब्रह्म परमात्मा से है। जो ब्रह्म 'निराकार'-रूप में पूजा जाता है, वही 'साकार'-रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में, सृष्टि-स्थिति और विनाश के कारक के रूप में है। भारतवर्ष के 'शिव-लिङ्गों' की संख्या भी असंख्य है, पर मुख्यतः **बारह ज्योर्तिलिङ्ग** हैं एवं विकल्प रूप में **तीन ज्योर्तिलिङ्ग हैं।**

ज्योर्तिलिङ्ग वे शिव-लिङ्ग हैं, जो किसी के द्वारा बनाए नहीं गए हैं, अपितु स्वतः प्रकट हुए हैं। इन ज्योर्तिलिङ्गों को जो प्रातः - सायं स्मरण करता है, वह अपनी सभी विघ्न - बाधाओं से मुक्त हो जाता है। इन ज्यार्तिलिङ्गों के प्रादुर्भाव के पौराणिक कथानक इस प्रकार हैं—

(१) **श्रीसोमनाथ ज्योर्तिलिङ्ग**—श्रीसोमनाथ ज्योर्तिलिङ्ग, काठियावाड़ (गुजरात) के अन्तर्गत पोछीनार से लगभग ८ कि० मी० की दूरी पर है। इसे **प्रभासी तीर्थ** भी कहते हैं। दक्ष-प्रजापति ने अपनी सत्ताइस कन्याओं का विवाह भगवान् चन्द्रमा से किया था। चन्द्रमा, अपनी पत्नी रोहिणी के प्रति अधिक अनुराग रखते थे। फलतः प्रजापति से छब्बीसों कन्याएँ इसकी शिकायत किया करती थीं। दक्ष राजा ने चन्द्रमा को बहुत बार समझाया, पर इसका कोई हल नहीं निकला। अन्त में रुष्ट होकर उन्होंने चन्द्रमा को 'क्षय'-रोग से पीड़ित होने का शाप दे दिया। चन्द्रमा, इस रोग से पीड़ित होकर कष्ट भोगने लगे। उनके कष्ट के साथ-साथ, अन्य लोगों को भी कष्ट होने लगा। देवता तथा ऋषि-गण इस रोग से छुटकारा पाने के उपाय की खोज में ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उनकी प्रार्थना सुनकर चन्द्रमा को **'प्रभास तीर्थ'** में मृत्युञ्जय भगवान् शङ्कर की आराधना करने का परामर्श दिया। चन्द्रमा, देवताओं, ऋषियों के साथ **'प्रभास तीर्थ'** में पहुँचे और मृत्युञ्जय भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे। छः मास तपस्या करने के बाद भगवान् मृत्युञ्जय प्रकट हुए और चन्द्रमा को आशीर्वाद दिया कि कृष्ण-पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी एक-एक कला कम होती जाएगी और शुक्ल - पक्ष में बढ़ती जाएगी तथा प्रत्येक पूणमा को तुम पूर्ण-रूप को प्राप्त करोगे। 'वर'-प्राप्त करने के बाद, चन्द्रमा की प्रार्थना पर भगवान् शङ्कर ज्योतिलिङ्ग के रूप में वहीं वास कर गए। इस तीर्थ में जो भक्त **मृत्युञ्जय का जप** करता है, वह 'क्षय'-रोग से छुटकारा पा जाता है।

(२) **मल्लिकार्जुन ज्योर्तिलिङ्ग**—मल्लिकार्जुन कृष्णा जिले (आन्ध्र - प्रदेश) में कृष्णा नदी के तट पर श्री शैल पर्वत पर, तेनाली स्टेशन से लगभग ६० कि० मी० दूरी पर अवस्थित है। इस स्थान को 'दक्षिण भारत का कलास' कहते हैं। इस ज्योतिलिङ्ग की उत्पत्ति का कथानक यह है कि एक बार श्री गणेश तथा श्री कार्तिकेय में यह झगड़ा होने लगा कि किसका विवाह पहले हो। बात निर्णय के लिए भवानी-शङ्कर के पास आई, तो उन्होंने यह कह दिया कि 'जो पृथ्वी की परिक्रमा कर पहले आ जाएगा, उसी का विवाह पहले होगा।' बात सुनते ही कार्तिकेय दौड़ पड़े किन्तु गणेश ने बुद्धि से काम लिया और अपने माता-पिता की सात बार परिक्रमा कर ली। फलतः वे पृथ्वी - प्रदक्षिणा के फल के अधिकारी हो गए और उनका विवाह 'सिद्धि' और 'ऋद्धि' से कर दिया गया। उनसे एक-एक पुत्र 'क्षेम' और 'लाभ'

उत्पन्न हुए। महर्षि नारद ने इस विषय को लेकर कार्तिकेय को भड़काया और वे माता-पिता से रूठ कर श्री शैल पर्वत पर चले गए। जब जगदम्बा को यह बात ज्ञात हुई, तो शङ्कर के साथ पुत्र से मिलने वहाँ गईं। उनके आने की सूचना पाते ही कार्तिकेय वहाँ से भाग गए। पुत्र को मनाने के लिए उसी स्थान पर भगवान् शङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में अवस्थित हो गए। वही लिङ्ग 'मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग' के नाम से विख्यात है।

(३) श्री महा-काल ज्योतिर्लिङ्ग—महा-कालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग उज्जैन (मध्य प्रदेश) में है। इसे अवन्तिका-पुरी भी कहते हैं। यह स्थान 'शिप्रा' नदी के तट पर है। यहाँ प्रति बारह वर्षों के बाद जब वृहस्पति सिंह राशि में जाते हैं, 'कुम्भ - मेला' लगता है। इस ज्योतिर्लिङ्ग के प्रादुर्भाव की कथा यह है कि राजा चन्द्रसेन उज्जैन में राज्य करते थे। वे बड़े शिव-भक्त थे। एक दिन, जब वे शिव की अर्चना कर रहे थे, एक पाँच वर्षीय गोप-बालक अपनी माता के साथ वहाँ आ पहुँचा। उसे भी इच्छा हुई कि मैं भी शिव की अर्चना करूँगा। वापस घर जाने पर उसने एक पत्थर का टुकड़ा ले, उसे ही शिव - रूप में स्थापित कर, उसकी पूजा आरम्भ कर दी। पूजा में वह इतना लीन हो गया कि वह अपनी सुध-बुध खो बैठा। अधिक समय तक उसे न देख, उसकी माता घबड़ा कर बुलाने लगी। इस पर भी वह नहीं आया, तो उसे लेने गई, किन्तु जब वह पूजा छोड़कर न उठा, तो उसने उसके सामने रखा हुआ शिव-लिङ्ग उठाकर फेंक दिया। बच्चे का ध्यान टूटा, तो शिव-लिङ्ग न पाकर रोना आरम्भ कर दिया। दुःख से मूर्छित होकर वह गिर पड़ा। भोलेनाथ उसकी भक्ति से प्रसन्न हो वहाँ ज्योतिर्लिङ्ग-रूप में अवस्थित हो गए। देखते-ही-देखते ज्योतिर्लिङ्ग के लिए स्वर्ण-जटित मन्दिर भी तैयार हो गया।

गोप-बालक श्रीकर जब सचेत हुआ, तो मन्दिर और शिव - लिङ्ग देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। भगवान् की पूजा और प्रार्थना आरम्भ कर दी। माता यह देख आश्चर्य में डूब गई। इस ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति की सूचना राजा चन्द्रसेन को मिली, तो वे भी वहाँ दौड़े आए। भक्त हनुमान भी वहाँ आए। वहाँ एकत्रित भक्त-मण्डली को सम्बोधित कर हनुमान ने कहा कि 'संसार में शीघ्र कल्याण करने-वाले भगवान् शिव को छोड़ कोई नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह गोप-बालक श्रीकर है। इस बालक की आठवीं पीढ़ी में महा - यशस्वी 'नन्द गोप' का जन्म होगा, जिनके यहाँ भगवान् कृष्ण पुत्र-रूप में जन्म लेंगे।

(४) ओङ्कारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग—यह ज्योतिर्लिङ्ग मालवा (मध्य प्रदेश) में नर्मदा नदी के तट पर ओङ्कारेश्वर स्टेशन से लगभग ६ मील दूर है। इस स्थान पर नर्मदा नदी की दो धाराएँ हैं। बीच में एक टापू-सा बन गया है, जिसे **मान्धातापुरी पर्वत** या **शिवपुरी** कहते हैं। सूर्य - वंशी राजा मान्धाता के दो पुत्र 'अम्बरीश' और 'मुचुकुन्द' अनन्य शिव - भक्त थे। इन दोनों भाइयों ने इस स्थान पर भगवान् शिव की तपस्या की थी। इनकी तपस्या का फल ही **ओङ्कारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग** है। इस ज्योतिर्लिङ्ग के चारों तरफ सर्वदा जल रहता है। एक और विशेषता यह है कि यह शिव - लिङ्ग मन्दिर के गुम्बज के नीचे नहीं है और मन्दिर के शिखर पर **माता-कालेश्वर** की मूर्ति है। इस पर्वत को 'ओङ्कार'-रूप मान कर बहुत से भक्त-जन इसकी परिक्रमा करते हैं। यहाँ महा-देव को चने की दाल 'प्रसाद'-रूप में चढ़ाई जाती है।

(५) वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग—यह देवघर (बिहार) में स्थित है। इस ज्योतिर्लिङ्ग की उत्पत्ति की कहानी यह है कि एक बार 'शिव' - भक्त रावण ने भगवान् शिव की आराधना की। पूजा में वह

भगवान् शिव को अपना सिर काट-काट कर चढ़ाता गया। जब वह अपना दसवाँ सिर काटने लगा, तो भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर 'वर' माँगने को कहा। रावण ने 'वर'-रूप में भगवान् शङ्कर से लिङ्ग के रूप में अपनी नगरी लङ्का जाने के लिए माँगा। इस पर भगवान् शिव ने कहा कि यदि तुमने इस शिव-लिङ्ग को लङ्का के अतिरिक्त कहीं दूसरे स्थान में रक्खा, तो मैं वहीं अवस्थित हो जाऊँगा। रावण जब शिव-लिङ्ग लेकर यहाँ से जा रहा था, उसी समय उसे लघु-शङ्का हुई। अतः वह शिव - लिङ्ग को एक ग्वाले के हाथ में रखकर लघु-शङ्का के लिए चला गया। इधर ग्वाले को शिव - लिङ्ग का बोझ असह्य हो जाने के कारण उसे वहीं भूमि पर रख देना पड़ा। अब भगवान् शङ्कर इसी स्थान पर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में जम गए। लौटने पर उन्हें रावण ने पूरी शक्ति से उखाड़ने का प्रयत्न किया, अन्त में वह निराश होकर उसे छोड़ अपनी राजधानी लङ्का चला गया। इधर ब्रह्मा तथा ग्वाला - रूप विष्णु ने शङ्कर की आराधना आरम्भ कर दी। इस ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन मात्र से लोग रोग - मुक्त हो जाते हैं। इस ज्योतिर्लिङ्ग पर 'काँवर' से गङ्गा-जल लाकर चढ़ाने की बड़ी महिमा है।

५. (अ) वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (विकल्प)--जामनार (महा - राष्ट्र) से दक्षिण लगभग ३० कि०मी० दूरी पर उक्त शिव-लिङ्ग अवस्थित है।

(६) श्री भीम - शङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग---यह 'मुम्बई', 'पूना' तथा 'नासिक' (महा - राष्ट्र) के बीचो-बीच है। यहाँ फाल्गुन की महा-शिव-रात्रि में विशाल मेला लगता है। भीमा नदी के किनारे, 'सह्याद्रि' पर्वत पर यह ज्योतिर्लिङ्ग अवस्थित है। मुख्य मूर्ति से थोड़ा - थोड़ा जल झरता रहता है। मन्दिर के पास ही दो कुण्ड हैं। जन-श्रुति है कि भगवान् शङ्कर ने 'त्रिपुरासुर' का वध करने के बाद इसी स्थान पर विश्राम किया था। 'भीमक' नामक सूर्य-वंशी राजा ने, जो बड़ा ही शिव-भक्त था, इसी स्थान पर तपस्या की थी। उसी की तपस्या के फल - स्वरूप यह ज्योतिर्लिङ्ग 'भीम - शङ्कर' नाम से विख्यात है।

६. (अ) श्री भीम-शङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग : यह गुवाहाटी (असम) के पास ब्रह्म-पुर पहाड़ी के पास अवस्थित है। वहाँ के राजा कामरूपेश्वर को 'भीमा' नाम का राक्षस पूजा-पाठ में विघ्न-बाधा पहुँचाया करता था। उसी दुष्ट को मारने के लिए तथा भक्त की रक्षा के लिए भगवान् शङ्कर प्रकट हुए थे। राक्षस को मारने के बाद वहीं ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में अवस्थित हो गए।

७. श्री रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग : लङ्का पर चढ़ाई करने के लिए भगवान् राम रामेश्वरम् (तमिलनाडु) में जब समुद्र के किनारे पहुँचे, तो आकाश-वाणी हुई कि 'बिना शिव की पूजा किए, न तो समुद्र पर पुल बाँध सकते हो, न लङ्का पर विजय ही प्राप्त कर सकते हो।' अतः राम ने समुद्र के किनारे समुद्र की बालू से ही शिव-लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा की। पूजा से प्रसन्न हो भगवान् शङ्कर प्रकट हुए। यह वरदान दिया कि 'तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी' और उस शिव - लिङ्ग में प्रविष्ट हो गए। इस प्रकार यह ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् शङ्कर के साथ भगवान् राम का भी स्मरण कराता है।

८. श्री नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग : 'द्वारिका' और 'भेंट द्वारिका' (गुजरात) के बीचों - बीच यह ज्योतिर्लिङ्ग है। यहाँ एक धर्मात्मा और सदाचारी शिव - भक्त वैश्य रहता था। वह अपने व्यापार के लिए नौका से इधर - उधर जाया करता था। एक दिन 'द्वारका' नामक राक्षस ने उसकी नौका पर आक्रमण कर दिया। नौका में बैठे सभी यात्रियों को अपने कारागार में बन्द कर दिया। सारे सामानों

को लूट लिया। कारागार में भी 'सुप्रिय' नामक वैश्य ने शिव की आराधना नहीं छोड़ी। साथ ही अपने साथियों में भी शिव-भक्ति की ज्योति जगा दी। यह सूचना जब 'द्वारका' को मिली, तो वह 'सुप्रिय' को मारने के लिए कारागार में जा पहुँचा। उस समय 'सुप्रिय' ध्यानावस्था में था। 'द्वारका' ने अपने सैनिकों को उसे मार डालने का आदेश दिया। उसी समय भगवान् शङ्कर वहीं एक ऊँचे स्थान पर ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में प्रकट हो गए एवं अपने भक्त की रक्षा के लिए पाशुपतास्त्र छोड़ दिया, जो सभी राक्षसों का संहार कर शिव-लोक को लौट गया। भगवान् शिव के आदेशानुसार शिव - लिङ्ग का नाम 'नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग' पड़ा।

८. (अ) **श्री नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (विकल्प)** : उदयगिर (महा-राष्ट्र) से ३० कि० मी० पर यह ज्योतिर्लिङ्ग अवस्थित है।

९. **श्री विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग** : वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में भगवान् विष्णु ने सृष्टि-उत्पत्ति के लिए भगवान् शङ्कर की आराधना की थी। यहीं उनके नाभि-कमल से ब्रह्मा आविर्भूत हुए और सारे संसार की रचना हुई। भगवान् आशुतोष ने प्रसन्न होकर विष्णु को यह आशीर्वाद दिया कि 'इस काशी-नगरी में जो भी प्राण त्याग करेगा, वह तत्काल मुक्ति को प्राप्त होगा। प्रलय - वेला में मैं इस काशी-नगरी को अपने त्रिशूल पर रखूंगा और सृष्टि के समय इस लोक में पहुँचा दूँगा। जो भी प्राणी यहाँ प्राण छोड़ेगा, उसे मैं **'तारक मन्त्र'** का उपदेश करूँगा, जिससे वह मोक्ष पाएगा।'

१०. **श्री त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग** : नासिक (महा-राष्ट्र) दक्षिण भारत की गङ्गा मानी जाने-वाली 'गौमति' अर्थात् 'गोदावरी' के उद्‌गम-स्थान के समीप ही यह ज्योतिर्लिङ्ग है। यह वही स्थान है, जहाँ 'सूर्पनखा' की नाक कटी थी और जहाँ से 'सीता' का हरण हुआ था। गौतम ऋषि ने यहाँ भगवान् शङ्कर की बड़ी आराधना की थी। इस स्थान की विशेषता यह है कि यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों लिङ्ग के रूप में हैं। इसी से 'त्र्यम्ब्रकेश्वर' नाम विख्यात है। इस ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन से प्राणी इस लोक और त्रिलोक में सदा आनन्द से रहता है।

११. **श्री केदारनाथ ज्योतिर्लिङ्ग** : किसी काल में भगवान् विष्णु ने नर और नारायण के रूप में भगवान् शङ्कर की आराधना उत्तराखण्ड में की थी, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में सदा वास करने का वर दिया। 'बदरीनाथ-दर्शन' के पूर्व यात्री 'केदारनाथ' अवश्य जाते हैं। इसी ज्योतिर्लिङ्ग के पास से मन्दाकिनी नदी बहती है। मन्दिर पहाड़ी ढङ्ग का है। भीतर इतना अँधेरा रहता है कि दर्शन दीपक के सहारे ही हो पाता है। यहाँ पुष्प-जल के अतिरिक्त घी चढ़ाने का महत्त्व है। मन्दिर के बगल में ही द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवों की मूर्तियाँ हैं।

१२. **श्री घुष्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग** : मध्य रेलवे के मनमाद (महा-राष्ट्र) स्टेशन से ६६ मील दूर दोलताबाद किले से पाँच मील दक्षिण पहाड़ की चोटी पर यह ज्योतिर्लिङ्ग स्थित है। यहाँ 'सुधर्मा' नामक ब्राह्मण अपनी पत्नी 'सुदेहा' के साथ रहते थे। दोनों बड़े ही शिव - भक्त थे, किन्तु उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। वंश - रक्षा हेतु 'सुदेहा' ने अपनी बहन 'घुष्मा' से अपने पति का दूसरा विवाह करा दिया। 'घुष्मा' अपने पति तथा अपनी बड़ी बहन की सेवा करने लगी। पति की शिव-भक्ति का प्रभाव उस पर भी पड़ा और वह नित्य एक सौ आठ पार्थिव शिव-लिङ्ग बनाकर विधि-वत् पूजा करने लगी। भगवान् शङ्कर की कृपा से उसकी गोद में पुत्र के दर्शन हुए। 'घुष्मा' के साथ - साथ 'सुदेहा' के भी आनन्द की सीमा न रही, किन्तु कुछ दिनों के बाद ईर्ष्या का बीज अंकुरित होने लगा। वही 'सुदेहा'

बच्चे को देख जलने लगी। समय बीतता गया, पुत्र का विवाह हुआ और घर में बहू आई। अब ईर्ष्या चरम सीमा पर पहुँच गई। 'सुदेहा' सदा यही सोचा करती कि 'ये मेरे कौन? मेरी सम्पत्ति को ये हड़प जाएँगे।' एक दिन रात्रि में उसने सौतेले पुत्र के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उन टुकड़ों को उसी सरोवर में डाल आई, जिसमें 'घुष्मा' प्रति-दिन अपने पार्थिव शिव-लिङ्ग का विसर्जन किया करती थी। नित्य के समान 'घुष्मा' प्रातः उठकर शिव की पूजा में लग गई। पुत्र के मारे जाने का उसे किञ्चित् भी शोक नहीं हुआ। बहू चीख मारकर रो रही थी, घर में कोलाहल मचा हुआ था, पर वह शिव-पूजा में लीन थी और 'सुदेहा' अपनी मनोकामना की पूर्ति से प्रसन्न थी। पूजा समाप्त कर 'घुष्मा' अपने पार्थिव शिव-लिङ्ग को लेकर सरोवर में छोड़ने गई। भगवान् शिव की अपरम्पार लीला! उसी समय उसका बेटा भला - चङ्गा उस तालाब से निकल आया और हाथ जोड़कर माँ से बोला -'माँ! मैं मरकर, पुनः जीवित हो गया। ठहरो, मैं भी चलता हूं।' शिव-लीला देख 'घुष्मा वहीं भगवान् शङ्कर के ध्यान में मग्न हो गई। भगवान् शङ्कर तुरन्त प्रकट हुए और उनका त्रिशूल उसकी सौत के शिरश्छेदन के लिए उद्यत हो गया। यह देखकर 'घुष्मा' ने हाथ जोड़कर अपनी बहन के लिए क्षमा माँगी और कहा कि— 'आपके दर्शन से तो वह पाप-मुक्त हो गई है।' उसकी उदारता पर भगवान् शङ्कर अति प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा। 'घुष्मा' ने यही वर माँगा कि 'आप सदा इस स्थान पर वास करें, जिससे संसार के प्राणियों का कल्याण हो।' भगवान् शङ्कर बोले—'ऐसा ही हो।' तभी से 'ज्योतिर्लिङ्ग' के रूप में वे वहाँ विराजने लगे। इसी घटना के अनुसार 'घुष्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग' नाम पड़ा और उस तालाब का नाम 'शिवालय' हो गया। इस ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं और सुख की प्राप्ति होती है।

कौल-कल्पतरु चण्डी मासिक (हिन्दी) के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१—प्रकाशन का स्थान — प्रयाग

२—प्रकाशन की अवधि — मासिक

३—मुद्रक का नाम — श्रीऋतशील शर्मा
पता — परा वाणी प्रेस प्रयाग-६

४—प्रकाशक का नाम — श्री ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय

५—सम्पादक का नाम — श्रीऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय

६—उन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं। — श्रीऋतशील शर्मा

मैं ऋतशील शर्मा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

—ऋतशील शर्मा (प्रकाशक)

'आदिशक्ति-पीठ' रजरप्पा

त्रि-दिवसीय साधना-शिविर का अलौकिक अनुभव

—डा० रामकीर्ति गांधी, झाँसी (उ० प्र०)

'सिद्ध-क्षेत्र रजरप्पा' में दि० १, २ तथा ३ नवम्बर, १९९२ को 'शाक्त-सम्मेलन' तथा 'साधना-शिविर' के आयोजन की सूचना डा० प्रमोद पालीवाल द्वारा मिली। माँ भगवती की कृपा से इच्छा जागृत हुई तथा तदनुसार उनको मैंने सूचित किया। तत्पश्चात् डा० पालीवाल तथा श्री विपन महाजन के साथ श्री गणेश का स्मरण कर तथा 'माँ' की जय-जयकार के साथ नई दिल्ली से दिनाङ्क ३०-९-९२ को प्रातः ५ बजे शुभ यात्रा प्रारम्भ की।

सायं-काल, प्रयाग से आदरणीय श्री रमादत्त शुक्ल जी तथा उनके साथ सर्वश्री उपाध्याय जी, ऋतशील शर्मा जी, ठाकुर साहब, तिवारी जी तथा पाण्डेय जी हम लोगों के साथ हो लिए। अगले दिन प्रातः लगभग १० बजे हम लोग 'रामगढ़' कैण्ट स्टेशन पहुँचे। वहाँ से 'रज - रप्पा' के लिए **'श्री कुमुद प्रीता ट्रस्ट'** द्वारा जीप तथा मारुति वैन की व्यवस्था की गई थी और हम लोग माँ के चरणों में सकुशल लगभग १२ बजे पहुँच गए।

माँ के इस **'सिद्ध - क्षेत्र'** का प्रभाव ऐसा कि वहाँ पहुँचते ही स्वयं ही ऐसी सुख - शान्ति का आभास हुआ, जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं। **'श्री कुमुद प्रीता ट्रस्ट'** द्वारा अत्यन्त ही उत्तम व्यवस्था की गई थी। चाय - पानी, खाने तथा रात्रि में सोने के लिए कम्बल आदि सब उपलब्ध थे। 'ट्रस्ट' के न्यासी श्री विपिनबिहारी शरण तथा उनके परिवार के अन्य सदस्यों की सेवा - भावना, 'माँ' के प्रति पूर्ण आस्था तथा समर्पण वास्तव में सराहनीय ही नहीं, उससे अपने आप को ऐसा प्रतीत हुआ कि हम तो व्यर्थ ही थोड़ा-सा पाठ-पूजा करके ही घमण्ड करने लग जाते हैं ! वास्तव में हम कुछ भी नहीं हैं।

कुछ विश्राम के बाद हम सबने **'सिद्ध-क्षेत्र'** के सभी मन्दिरों के दर्शन किए। फिर सब लोग **'भैरवी'** नदी में स्नान करने गए। वहाँ का दृश्य अत्यन्त ही मनोरम था—**'भैरवी'** तथा **'दामोदर नद'** का अपूर्व सङ्गम ! स्नान से यात्रा की सारी थकान मिट गई। मैं और श्री विपन महाजन तो पहले ही चले आए, किन्तु अन्य लोग थोड़ी देर बाद आए और उन्होंने बताया कि **'भैरवी'** नदी से एक छोटा पत्थर निकाल कर **'माँ छिन्न-मस्ता'** देवी के मन्दिर पर रखने से एक मनो - कामना पूर्ण हो जाती है। हमने गुरु जी से दूसरे दिन प्रार्थना की कि हमसे भी एक पत्थर रखवा दें। अगले दिन स्नान के बाद पत्थर रखा भी, परन्तु माँ की ऐसी लीला कि मैं कुछ माँग ही नहीं सका ! जैसी माँ की इच्छा। वह तो स्वयं ही जानती है—पुत्रों के मन की कामना तथा वही उसे पूर्ण करती है, बड़ी ममता-मयी है।

मेरे लिए वह दिन अत्यन्त ही सौभाग्य का दिन रहा क्योंकि रात्रि में गुरु जी ने स्वयं विशेष कृपा कर इस अल्पज्ञ को दीक्षा देकर कृतार्थ किया, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वैसे गुरु जी से पत्राचार डा० प्रमोद पालीवाल के सहयोग से लगभग एक वर्ष से चल रहा था और उनके कृपा-पत्र, 'सम्पादक की वाणी' तथा 'चण्डी' पत्रिका के माध्यम से उनसे सम्बन्ध बना हुआ था और एक

बार 'दतिया' में परम पूज्य 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी के निर्वाण-दिवस पर 'श्री पीताम्बरा पीठ' पर दर्शन-लाभ भी मिला था, परन्तु **'सिद्ध-क्षेत्र'** में मेरी गुप्त मनोकामना अकल्पित रूप से पूर्ण हो गई !

अगले दिन हम सब लोगों ने गुरु महाराज के साथ दशों महा - विद्या के मन्दिरों में बैठकर उनकी स्तुति की। उस समय जो आनन्द मिला, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। श्री पाण्डेय जी ने बीच-बीच में जो भजन जिस सुर तथा रस से गाए, उससे मिले आनन्द की तो व्याख्या ही नहीं हो सकती। इसी दिन रात्रि में श्री ऋतशील शर्मा जी ने एक फाइल दी, जिसमें **'शिविर'** में पढ़े जानेवाले विभिन्न प्रपत्र थे। जैसे ही मैंने उनको पढ़ना प्रारम्भ किया, तो देखा कि सबसे अन्त में मेरा भी एक प्रपत्र था, जो मुझे पढ़ना था। बड़ा ही आश्चर्य हुआ तथा घबराहट - सी हुई क्योंकि मुझे इस विषय में कुछ अधिक नहीं आता था। शर्मा जी ने बताया कि 'प्रपत्र' की सूचना उन्होंने पहले ही मुझे भेजी थी, परन्तु मैं झाँसी से ८ दिन पहले ही चल चुका था, जिससे वह मुझे नहीं मिल पाई थी। अस्तु, श्री ऋतशील जी तथा श्री उपाध्याय जी द्वारा मेरी शङ्काओं का समाधान किया गया और मैंने अपना पूरा प्रपत्र पढ़ लिया।

'शिविर' का कार्य-क्रम प्रारम्भ होने पर साधना के विषय में विभिन्न प्रकार के पहलुओं पर प्रकाशित प्रपत्रों के माध्यम से चुने हुए साधकों ने अपने विचार प्रकट किए। अन्त में जब मेरे 'प्रपत्र' का समय आया, तो जो कुछ घबराहट थी, परम पूज्य गुरु जी के आशीर्वाद से, जैसे ही शुरू किया, सब दूर हो गई।

इस सन्दर्भ में सबसे सुखद तथा विशेष उल्लेखनीय बात यह रही कि जिस समय मैं पढ़ रहा था (मेरा विषय था—'दश महा-विद्या का ध्यान एवं रोग - मुक्ति', जो परम पूज्य स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती जी की कृपा से प्राप्त हुआ था), उसी समय पटना से पधारे श्री विजय वत्स जी को सिर-दर्द हो रहा था और जो प्रयोग मेरे द्वारा बताया जा रहा था, उसका उन्होंने तत्काल स्वयं अपने पर प्रयोग किया। उन्हें तुरन्त लाभ हुआ और उनका सिर-दर्द दूर हो गया। जैसे ही मैं अपना प्रपत्र पढ़ कर आया, उन्होंने उक्त सुखद बात मुझे बताई। बड़ा ही आश्चर्य तथा आनन्द मिला, परन्तु साथ ही यह प्रेरणा भी मिली कि इस विषय में आगे कुछ किया जाए। आशा है, गुरु-जनों से इस दिशा में आगे मार्ग-दर्शन मिल सकेगा।

अन्तिम दिन, अन्य सम्मान्य अतिथियों, साधु-महात्माओं के दिव्य दर्शन-लाभ के अतिरिक्त उनके उद्बोधक प्रवचन सुनने को मिले। पूर्ण सन्तोष के साथ 'माँ' की अनुमति लेकर हम लोगों ने **'सिद्ध-क्षेत्र रजरप्पा'** से विदा ली। वापसी में प्रयाग रुकने का अवसर मिला और गुरु जी के निवास पर एक दिन रुककर रात्रि में डा० पालीवाल तथा श्री महाजन के साथ वापस घर आया।

इस प्रकार के आयोजन सबके कल्याण के लिए, राष्ट्र तथा विश्व-शान्ति के लिए होते रहें— ऐसी कामना है। आशा ही नहीं, विश्वास है कि गुरु जी भारतवर्ष के अन्य सिद्ध-क्षेत्रों में भी इस तरह के आयोजन करने का प्रयास करेंगे, जिससे हम सबका जीवन सुख-मय तथा सफल बन सके।

अन्त में मैं अपना विशेष आभार डा० पालीवाल जी के प्रति प्रकट करता हूँ कि उनकी प्रेरणा से मुझे यह सब मिला, जिसे मैंने कभी सोचा भी नहीं था।

तारा-साधना

—पं० श्री बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

शहर से दूर,
जहाँ भृगु ने नर्मदा की गोद में—
'तारा' को जगाया होगा।
मुझे देख मुस्कुराता है परमहंसी आश्रम,
पीताभ कलेवर में पश्चिमी किनारा—
डूबता हुआ भास्कर ॥
धार के मध्य में चट्टानी द्वीप पर—
बैठा हुआ मछुआरा,
ध्यान-मग्न, निर्निमेष, निश्चल।
पूर्वी किनारे पर एकाकी साधक—
अँजुरी में नर्मदा का लेकर सहारा ॥
साधना की डोर पर तलाशता हुआ मोती,
डूब जाता है—
अतल गहराई में उतरकर ॥
उभरेगी अवश्य कभी सतह पर—
एकाकी मछली की ऊर्मियों पर हलचल,
पर उदास हो उठी है नर्मदा—
सन्ध्या की बेला में, दिन की विदाई पर।
मिलेगी नहीं अब मत्स्यों की झलक—
उदास हो उठता है मन-मछुआरा ॥
दूर पहाड़ी पृष्ठ-भूमि में—
खो जाता है कहीं, गायों को पुकारकर ग्वाला।
खो जाता है, सन्ध्या की गोद में चमककर—
गायों की पीठ का उजाला ॥
जो 'काम-धेनु' गाय पाई थी आपने वशिष्ठ !
कर नहीं पाएगा धारण कोई उसे अन्य,
स्वयं से ही हारकर, तो बनेगा वारिस—–
'काम-धेनु' गाय का अकिञ्चन-सा मन ॥
यह जानकर कि पाना उसे मुश्किल है,
पालित आकांक्षाओं की होड़ में—
मूक हो गया हूँ मैं ॥
क्या मूक-निमन्त्रण, जो उभरे हैं कागज पर—
पहुँचेंगे नहीं बेसहारे, कभी आप तक ?
माँगता हूँ अतः, माता अरुन्धती का सहारा।
बन्धित है विद्या जिस पाश से,
उसे खोल दें वशिष्ठ—–
स्वामी दत्त, परशुराम, विश्वामित्र ॥
माता अरुन्धती के द्वार पर—
बँधा हुआ बछड़ा चिल्लाता है बाँ-बाँ !
समस्त रोम-कूपों की पुकार को—
उठाए हुए पूँछ पर चिल्लाता है बाँ-बाँ !
प्यासे न रह जाएँ—जल-थल और अग्नि, पवन—
कैसे करूँगा तृप्त, अमिट प्यास गगन-कण्ठ !
प्यासा न रह जाए तेरा 'बलराम', अम्ब !
बँधे हुए बछड़े को खोलना ही होगा।
दुहना ही होगा श्री वशिष्ठ !
'काम-धेनु' गाय आज मेरे लिए ॥
रख नहीं सकते हैं आँगन में—
पाँव बिना आज्ञा के देव और त्रिदेव भी !
प्रसन्न क्षीर-सिन्धु में—
अकिञ्चन अनाथ 'बलराम' की बिसात क्या !!
भाएँगे क्या उसे गीत ये अनर्गल-से ?
लय-धुन-विहीन ताल—–बन्ध-हीन छन्द मेरे ?
जगाएँगे अवश्य श्वान-पुत्रों को,
रात की नीरवता में।
तब तन्द्रा के टूटने पर—करोगी नहीं क्षमा क्या ?
क्या करूँ माँ ? रुदन जो बदल गया है हिचकी में—
उस पर वश भी तो नहीं चलता !
उतरो माँ ! प्रात-सूर्य-मण्डल से—–
किरण-रस-सरोवर लिए, तारिणी तारम्बिके !
थक गया हूँ घूमते-भटकते हुए—
आएँ अब स्वयं अम्ब पास मेरे।
नव-नील पद्म-राग-स्नात, स्वच्छ आसमान में—–
उतरो माँ ! प्रात-सूर्य-मण्डल से ॥
बादलों के काले मस्तूल पर—–
जब कभी देखता हूँ, उगते हुए सूर्य को।

तेरे उदय का आभास—
होने लगा है तारम्बिके !
ओ ! 'एक-जटा' पिङ्गल-लट,
सोन-किरण सूर्य-शक्ति !
मन्त्र-मय धरोहर तू, सूर्य की अदिति के पास—
गुँथी हुई मन्त्र-शक्ति पावन षडक्षरों में—
ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट् !
प्रलय तरङ्गों की महा-सिन्धु-यात्रा में—
फूलों की 'एक-जटा' नौका हो ।
मन्त्रों की पावन पतवार पञ्चाक्षरी—
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् ।।
ओ अक्षोभ्य-धारिणी, तारिणी, तारम्बिके !
करो पार सिन्धु की उत्तुङ्ग-तुङ्ग लहरों से—
कागज की नाव-पतवार लिए बैठा हूँ !
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् । ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् !!
पार करो तारिणी ! बनो स्वयं ही नाविका—
पतवार बनो,
शान्त करो अन्तस् की ज्वाल क्षीर-सागरा !
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् !!
दहक उठी गङ्गा, चीत्कार उठा चाँद—
शिव-मस्तक पर; न रह सके अक्षोभ्य—
तेरे भाल के भी आश्रय में—
कैसा था भीषण वह कालकूट अग्नि-दाह ?
कैसा था विष, जिसने क्षुब्ध किया शिव को—
विदग्ध नील-कण्ठ को,
पर कितना था अमिय मधुर सञ्जीवन स्तनों का—
कि काल-कूट जहर का हलाहल किया तूने शान्त ?
वह रूप तेरा 'कामा' ! वह नाम तेरा 'वामा' !
अन्तस् की ज्वाला को शान्त करे—शान्त करे !!

जिसे रखती हो मस्तक पवित्र पर बिठाकर,
पोषती हो स्तनों से दूध को पिलाकर—
बढ़ाती हो पैंतरे में पाँव, उसे रौंदती हुई—
अपने ही दूध से सु-पुष्ट हुई छाती को !!
पाना है शिवत्व अगर, लीला-मयी सृष्टि में
तो बिछना पड़ेगा ही काल-जयी पाँव-तले !!
चेतना की जड़ता को करती हो अङ्गीकार,
गोद में बिठाकर शिवत्व को जगाती हो ।
ओ अक्षोभ्य-धारिणी, तारिणी तारम्बिके !
तू ही 'उग्र-तारा' उत्पात-विघ्न-हारिणी ।
तू ही नील-शारदा, सरस्वती, महा-विद्या—
गुह्य-तम रहस्य-मयी विद्या-वर-दायिनी ।।
डँस सकें न नाग, नष्ट निविड़ अन्धकार हो,
बाँध चली बाँहों में नाग-पाश-कङ्गना ।
चला सकूँ स्वच्छन्द पन्थ, बाँध चलीं पाँव में
नाग-पाश-पैंजनी व कमर नाग-कर-धना ।
लहराएँ मुक्त प्रेम-राग दस दिशाओं में—
काट तीव्र कर्त्तरी से जाल-पाश-बन्धना ।
पिङ्गला प्रभात 'एक-जटा'-रश्मि रेशमी—
कौन करे सिन्धु-सप्त पार, अम्ब ! तुम बिना ?
ओ एक-जटा तारा, अक्षोभ्य नील-तारा !
बन जहाज-यान सप्त-सिन्धु मुझे तारना ।।
हरो उग्र रूप उग्र-तारा ! उत्पात घोर—
कष्ट-क्लेश-विघ्न-ताप भय महा-भयावना ।
सरस काव्य वाङ्-मय-प्रवाह नील-शारदा,
बहे गङ्ग, यमुन छन्द सहज-सिद्ध साधना ।
ओ एक-जटा तारा, प्रचण्ड उग्र-तारा—
प्रसन्न नील-तारा, स्वीकार करो अर्चना ।।

पंचाग्नि-तपस्या

—कौलाचार्य पं० नथमल दाधीच

[परम पूज्य 'कौलाचार्य' श्री पं० नथमल जी दाधीच २० अक्टूबर, १९९२ को दिवङ्गत हो गए। 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाशित आपके अनुभव-पूर्ण शोधात्मक लेखों से आपके साधना-परायण जीवन का स्पष्ट परिचय मिलता है। सन् १९५० में अपनी अर्द्धाङ्गिनी के स्वर्गवास के बाद आप कठोर साधना में तल्लीन हो गए। १९५६ से १९५८ तक त्रि-वर्षीय पञ्चाग्नि-साधना आपने की। १२ घण्टे अहोरात्र आसन पर ही विराजनेवाले आप जैसे साधक कदाचित् ही कहीं दिखाई पड़ेंगे। साधना-विषयक आपके लेख अत्यन्त गम्भीर तो होते ही थे, उनमें रहस्य-पूर्ण बातों की व्याख्या भी स्पष्ट रूप में मिलती थी। आपके द्वारा लक्ष्मणगढ़, जि. सीकर (राजस्थान) में स्थापित श्रीभुवनेश्वरी महा-शक्ति पीठ का सञ्चालन आपके सुयोग्य सुपुत्रों द्वारा किया जा रहा है। इस 'पीठ' में जिज्ञासु साधक जाकर ठहर सकते हैं और साधना-उपासना की बातें सीख सकते हैं। 'कौलाचार्य' द्वारा संगृहीत दुर्लभ साधना साहित्य भी वहाँ उपलब्ध है। आपकी पुण्य स्मृति में आपके पञ्चाग्नि-तपस्या शीर्षक लेख का मुख्यांश यहाँ पुनः प्रकाशित है।—सं०]

आर्य-भूमि भारत-वर्ष सदा ही 'तपो-भूमि', 'पुण्य-भूमि', 'वीर-भूमि' नामों से विख्यात रही है। भारत की पवित्रता तथा गुरुत्व भी यहाँ के तपो-निष्ठ महात्माओं के कारण ही है। इस पवित्र आर्यावर्त में असंख्य 'तीर्थ' और 'सिद्ध-पीठ' हैं। उनके मूल का अध्ययन करने से यही निश्चय होता है कि इन तीर्थों एवं पीठों में अनेक तपो-निष्ठ महात्माओं का निवास होने के कारण ही ये सलिल-धाराएँ व सिद्ध-क्षेत्र महा-शक्ति-रूप हुए हैं। जो यहाँ स्नान व ध्यान करता है, वह पूर्ण-रूप से पवित्र हो परम - पद को प्राप्त होता है।

'तप-बल रचही प्रपञ्च विधाता।' 'तप' से 'कल्मष' का नाश होता है। योग-मार्ग में महर्षि पतञ्जलि ने भी 'तप' के ऊपर ही 'योग' की नींव स्थापित की है। व्यास - भाष्य में 'तप' के विषय में विस्तृत व्याख्या हुई है तथा सब तपों में उत्तम **'अग्नि-तप'** बताया गया है क्योंकि **'तप्यते इति तपः'**। **'तप् सन्तापे'** धातु से 'तप' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है आँच, गर्मी इत्यादि। श्रुतियाँ भी 'तप' की प्रशंसा विशेष रूप से करती हैं। जैसे—

''यह प्रसिद्ध है कि श्वेताश्वतर नामक ऋषि 'तप' के प्रभाव से और परम - देव परमेश्वर की कृपा से 'ब्रह्म' (महा - शक्ति) को जान सके। उन्होंने ऋषि - समुदाय से सेवित, परम पवित्र आश्रम के अभियान से अतीत, अधिकारियों को उत्तम रूप से उपदेश किया था।'' (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

सुप्रसिद्ध वरुण ऋषि ने उनसे कहा कि 'ब्रह्म' (महा - शक्ति) को 'तप' से तत्त्वतः जानने की इच्छा करें। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर उन्होंने 'तप' किया। उन्होंने 'तप' करके ब्रह्म - विभूति को जानते हुए 'पर-ब्रह्म' (महा-शक्ति) को जाना। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

जो वन में रहनेवाले शान्त स्वभाववाले विद्वान् तथा भिक्षा के लिए विचरनेवाले 'तप' (पञ्चाग्नि-तपस्या) रूप भक्ति का सेवन करते हैं, वे रजो-गुण-रहित सूर्य के मार्ग से वहाँ चले जाते हैं, जहाँ पर जन्म-मृत्यु से रहित वह नित्य अविनाशी परम पुरुष रहता है। (मुण्डकोपनिषद्)

पर-ब्रह्म विज्ञान-मय 'तप' से 'उपचय-वृद्धि' को प्राप्त होता है, उससे 'अन्न' उत्पन्न होता है। 'अन्न' से क्रमशः 'प्राण', 'मन', 'सत्य' (स्थूल-भूत समस्त लोक और कर्म तथा कर्मों से अवश्यम्भावी सुख-दुःख स्वरूप फल) उत्पन्न होता है। (मुण्डकोपनिषद्)

उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा यही सिद्ध होता है कि 'तप' अर्थात् पञ्चाग्नि-तपस्या वेदान्तोक्त उद्गीथ, मधु आदि विद्याओं की तरह ब्रह्म को प्राप्त करने की एक स्वतन्त्र विद्या है। अन्य विद्योपासना की तरह इससे भी श्रुतियों ने देव-यान से साक्षात् रूप से पर-ब्रह्म-प्राप्ति बतायी है। यह कोई कर्म-काण्ड नहीं है, किन्तु 'मोक्ष-विद्या' है। वेदान्त की उपर्युक्त श्रुतियाँ तथा अन्य भी बहुत - सी श्रुतियाँ इसका आधार हैं। मोक्ष प्राप्त करने में इसकी अपनी एक विशेषता है।

स्थूल पञ्च-भूतों के आवरण से तथा हृदय में मलिनता के अधिक होने के कारण, जिसे शाक्त-ग्रन्थों में मायिक, आणविक, कार्मिक मल कहा जाता है, जीव की 'पशु' संज्ञा है तथा सर्वज्ञत्वादि शक्तियों से वह हीन रहता है। 'पञ्चाग्नि - तपस्या' द्वारा अद्वैत - भावना से साधना करने पर उक्त मल नष्ट होकर, पञ्च-अग्नियों द्वारा पञ्च-भूतों का पवित्र परिणाम होकर शक्ति का सञ्चय होने पर शाक्त-दर्शनानुसार साधक का शरीर 'शाक्त' बन जाता है और साधक जीवन-मुक्त अवस्था का अनुभव करता है। जप-ध्यानादि साधना के अन्य अङ्गों का इसमें समावेश हो जाता है।

श्रुति में इस 'तप' का प्रधान रूप से वर्णन है। अतः इस साधना में अन्य जो साधन सहायक-रूप से लिए जाते हैं, वे गौण स्थान रखते हैं क्योंकि 'तप' ही साक्षात् रूप से मोक्ष का हेतु है। शाक्त-वाद के अनुसार यह साधना (पञ्चाग्नि-तपस्या) 'वीराचार' के अन्तर्गत है। अधिकारनुसार 'वीर-साधना' से सिद्धि प्राप्त करने में कई मार्ग हो सकते हैं क्योंकि श्रुतियों में भिन्न-भिन्न उपासना-प्रणालियों का अधिकारानुसार कथन किया गया है। मुमुक्षुत्वादि षट्-सम्पत्ति का भी पालन इस साधना में हो जाता है। शरीराभिमान, देहाभिमान, जीवन का मोह आदि इस साधना में संलग्न होने पर स्वतः अनायास ही नष्ट हो जाता है। चित्त-शुद्धि तथा भूत-जयहोने से समाधि-सिद्धि हो जाती है। विहङ्गम 'वीर-मार्ग' द्वारा इसी जन्म में मोक्ष - रूपी फल प्राप्त किया जा सकता है।

'श्रीदुर्गा - सप्तशती' का मध्यम चरित ज्ञान - मार्ग से सम्बन्ध रखता है। उसमें बताया है कि वैश्य तथा सुरथ ने तप करके ही श्री भगवती को प्रत्यक्ष कर भोग और मोक्ष प्राप्त किया था। श्रुतियाँ भी इसी बात को पुष्ट करती हैं। जैसे—**'नायमात्मा बल-हीनेन लभ्यः'** अर्थात् यह आत्मा शक्ति-हीन के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

'तप' की इतनी विशेषता होने के कारण ही हमारे देश में तपस्वी लोग सभी सम्प्रदायों में दिखाई देते हैं। 'गीता' में भी **'तपस्विभ्योऽधिको योगि'** इत्यादि रूप से 'तपस्वि-सम्प्रदाय' के विषय में उल्लेख हुआ है। इस सम्प्रदाय के अनेक स्वरूप हैं, जैसे—ऊर्ध्व - बाहु, आकाश - मुखी, नथी, ठारेश्वरी, ऊर्ध्व-मुखी, पञ्च-धुनी, मौन-वृत्ति, जल-स्थायि, जल-धारा-तपस्वी इत्यादि। इन सब में **'पञ्चाग्नि-तपस्या'** ही प्रधान है। अन्य सम्प्रदाय इसी की शाखा-मात्र हैं, जो तपस्या के किसी अङ्ग-विशेष का साधन करते हैं क्योंकि **'तप'** कायिक, वाचिक, मानसिक, वर्षा - कालीन और शरद - कालीन, अनशन तथा अन्य भी कई प्रकार के होने के कारण इन सम्प्रदायों की सृष्टि हुई है। तथापि उपनिषदुक्त **'पञ्चाग्नि-तपस्या'** में सभी का समावेश हो जाता है। वह एक साङ्गोपाङ्ग पूर्ण उपासना-पद्धति है। शीत इत्यादि शक्तियाँ भी तपः-प्रभाव से ही परिणाम को प्राप्त होती हैं। अतएव वे तपो-शक्ति की अंश-मात्र हैं।

शाक्त - धर्म में 'दक्षिणाचार' तथा 'वीराचार'—दोनों में **'तपस्या'** को स्थान दिया गया है। 'दक्षिणाचार' में तो स्पष्ट है ही, किन्तु 'कौलाचार' में भी कहा है—**न ध्यानं न तपो नार्चा, धर्मो न च सत्क्रिया,** इत्यादि। इसी प्रकार वैष्णव धर्म में भी तपश्चर्या का विशेष उल्लेख मिलता है। 'वैखानस' आदि ग्रन्थों तथा 'भागवत' आदि में देख सकते हैं।

अब 'तपश्चर्या' के विषय में किञ्चित् क्रिया-कलाप तथा फल का विश्लेषण करते हैं—

'तप' से स्वर्ग मिलता है, 'महत्'-पद प्राप्त होता है। 'तपो-युक्त' जितेन्द्रिय पुरुष के सब काम सिद्ध होते हैं। क्षत्रिय भुजा के पराक्रम से अपनी आपत्ति को दूर करें, वैश्य धन से, शूद्र सेवा से और ब्राह्मण जप-होम से आपत्ति को दूर करें। ब्राह्मण प्रयत्न-पूर्वक 'तपस्या' करें, शरीर-शोषण को उत्तम 'तप' कहते हैं। कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों की विधि से शरीर को शुद्ध करे और पितृ-देवों का तर्पण करे। राजा और ब्राह्मण अपने घर में 'तपस्या' करें। गृहस्थ, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ भी अधिकार - भेद से यज्ञादि-पूर्वक शुद्ध स्थान में 'तपस्या' करें। मोक्ष की इच्छा से और स्मार्त - कर्म भी निष्काम - भाव से किए जा सकते हैं। साग्निक सदाचारी और विद्वानों से सुशिक्षित पुरुष फल, मूल, जल आदि से प्रयत्न पूर्वक 'तप' करे।

'हे निष्पाप ! तप मेरा हृदय है। मैं तपस्या का साक्षात् आत्मा हूँ। मैं तपस्या से ही इस जगत् को रचता हूँ। तपस्या से ही संहार करता हूँ। तपस्या से ही संसार का पालन करता हूँ। मेरे पराक्रम में कठिन तप ही कारण है।

हे ब्रह्मन् ! तपस्या करो। तुम्हारा कल्याण होगा। तप सम्पूर्ण प्राणियों को सुख देनेवाला है। तप से ही तुमने इस संसार को रचा था। तप से ही परम - ज्योति सर्व-भूतों की अन्तरात्मा अधो - क्षत् भगवान् को मनुष्य शीघ्र प्राप्त होता है। तपस्या, विद्या, योग और समाधि से युक्त ऋषिकेश भगवान् ने ऋषियों के साथ तीन प्रकार की सृष्टि की रचना की थी।'

ब्रह्मा ने अपने मुख से अपने आत्म-लाभ के लिए छन्दो-मय तपो-विद्या योग-युक्त अलम्पट आप लोगों को रचा था। इसके बाद समाधि, योग और क्रिया-योग से कर्दम ने दस हजार वर्ष तक सरस्वती के तट पर तपस्या की। इसके बाद काशी-वास-प्राप्ति के लिए भी तप आवश्यक है।

'शिव-रहस्य' में लिखा है—पूर्व-काल में शिव-व्रत-परायण, शिव को ही प्रधान देव माननेवाला हिमवान पर्वत के शिखर पर रहनेवाला ब्राह्मण था। अपने सम्पूर्ण श्वासों को रोककर, मन को दृढ़ बना कर, पञ्चाग्नि के मध्य में स्थित होकर उसने कठिन तप किया। हजार युग तक कठिन तपस्या करके, एक युग तक अधो-मुख होकर धूम्र-पान किया। फिर हजार बार समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। फिर श्री शैल पर्वत की सौ बार प्रदक्षिणा की। इसके बाद श्री शैल के शिखर पर निराहार होकर सार्ध-कोटि युग तक बड़े यत्न से तपस्या की क्योंकि श्री शैल से बढ़कर तपस्या की सिद्धि करनेवाला दूसरा स्थान नहीं है।

'पुराण-संहिता' में कहा है—सम्पूर्ण वस्तु का साधन मैं तप को ही मानता हूँ। पाप - कर्म का साधन आलस्य से बढ़कर कोई अन्य नहीं है। मनुष्य को निष्काम बुद्धि से तप करना चाहिए। तीनों भुवनों में तप के समान फल देनेवाला कोई नहीं है। तप से राज्य मिलता है और तप से ही धन भोगा जाता है। तप से ही मोक्ष मिलता है और तप से ही ज्ञान मिलता है।

ध्रुव नामक पाँच वर्ष के बालक ने माता के समझाने पर इस प्रकार की तपस्या के फल को प्राप्त किया। वह नारद के उपदेश से दृढ़-मति होकर द्वादशाक्षर मन्त्र को ग्रहण कर मधु - बन को चला

गया। वहाँ पर उसने बड़ा कठिन तप किया। रात्रि में उपवास करके ऋषि के आदेश से सावधान होकर परम-पुरुष की परिचर्या की। तीन-तीन रात्रि के अन्त में कपित्थ और बेर को खाकर अपनी वृत्ति के अनुसार भगवान् का पूजन करते हुए एक मास व्यतीत किया। दूसरे महीने में छठे दिन उस बालक ने गिरे हुए तृण-पत्ते खाकर भगवान् का पूजन किया और तीसरे महीने में नवें दिन जल - भक्षण करके समाधि लगाकर भगवान् का पूजन किया। चौथे महीने में प्रति बारहवें दिन वायु भक्षण करके श्वास को जीतकर श्रीपरमात्मा का ध्यान किया। पाँचवाँ महीना प्राप्त होने पर श्वास को जीतकर वह राज - पुत्र ध्रुव, परमात्मा का ध्यान करता हुआ, एक पैर से खड़ा होकर अचल वृक्ष की तरह स्थिर हो गया। सब ओर से मन को खींचकर हृदयेश भगवान् का ध्यान करते हुए भगवान् के रूप से अन्य कुछ भी नहीं देख सका। फिर तपस्या के प्रभाव से उसको अनुत्तम पद की प्राप्ति हो गई, जिसको '**ध्रुव - पद**' कहते हैं। विद्वान् लोग 'तप' ही को मनुष्यों का धर्म कहते हैं, जिसका आचरण करने से मनुष्य पाप-रहित हो जाते हैं। कष्ट के बिना '**व्रत**' नहीं होता है और '**व्रत**' के अन्त में उत्तम सुख मिलता है। इसलिए जिस किसी उपाय से भी '**साङ्ग-व्रत**' करो।

'उत्तर खण्ड' में **तमोपहा ऋषि ने कहा**—हे राजन्! कठिन तप से शरीर को क्यों क्लेश देते हो? इस तप से जिसकी प्राप्ति नहीं होती है। **सम्वरण ने कहा**—सब मनुष्यों के हृदय में मनोरथ होते हैं किन्तु भाग्य से सिद्धि होती है और भाग्य तपस्या से बनता है। हे देवि! तपोनिष्ठ मनुष्यों की मृत्यु उत्तम होती है और दूसरे जन्म में निश्चय ही उसके मनोरथ सिद्ध होते हैं।

'मत्स्य पुराण' में सब मुनियों के प्रति **और्व ऋषि ने कहा**—ब्रह्म-योनि में उत्पन्न हुए आर्त-दर्शी ब्राह्मण का अच्छी प्रकार आचरण किया हुआ ब्रह्मचर्य, ब्रह्मा को भी चलायमान कर देता है। गृहस्थाश्रम में रहनेवाले मनुष्यों की तीन वृत्तियाँ होती हैं, वर्णाश्रम में रहनेवाले हम लोगों की तो वन में ही वृत्ति है। अन्न-भक्ष, वायु-भक्ष, दन्तोलूखलि, अश्म-कुट्ट, पञ्च-धुनि तपनेवाले—इन कठिन व्रतों से भी तपस्या में स्थित होकर सिद्धि को पाते हैं।

'मोक्ष-धर्म' में लिखा है—सफेद वस्त्र धारण करनेवाला, नीचे जमीन पर सोनेवाला, दुर्वासा तथा मण्डूक पर शयन करनेवाला, वीरासन से रहनेवाला, चीर धारण करनेवाला, आकाश में स्थान बनाकर सोनेवाला, ईंटों का प्रस्तर बनाकर सोनेवाला, काँटे बिछाकर सोनेवाला, भस्म-प्रस्तर पर सोनेवाला, भूमि-शय्या धारण करनेवाला, वीर-स्थान, जल-पङ्क, भोज-पत्रादि फलक पर सोनेवाला भी योगी की सिद्धि को प्राप्त होता है। अनेक प्रकार की शय्या बनाकर, ध्यान लगानेवाला, मूँज की मेखला बना कर, रेशमी वस्त्र या काला मृग - चर्म धारण करता हुआ, शण का वस्त्र धारण करता हुआ, व्याघ्र-चर्म को धारण करनेवाला, सिंह-चर्म पट्ट-वस्त्र को धारण करनेवाला, पट्टी तथा काँटों का वस्त्र धारण करनेवाला, पाटु-वस्त्र और चीथड़ा धारण करनेवाला, अन्य भी नाना प्रकार के वस्त्रों को धारण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष समता रखे। नाना प्रकार के भोजन और नाना प्रकार के रत्नों को भी यथा-समय धारण कर ले।

एक रात्रि के बाद भोजन करना, एक काल में भोजन करना, चौथे या आठवें काल में भोजन करना, छठे काल में भोजन करना, छः रात्रि से भोजन करना, आठ दिन से भोजन करना, सात रात्रि या दस दिन से भोजन करना, बारह रात्रि से भोजन करना। एक मास तक उपवास करे। फल-मूल भोजन करे, वायु का भक्षण करे। जल, खल, दही, गोबर का भोजन करे। गो-मूत्र, शाल पुष्प, सिवाल

का भोजन करते हुए कभी कच्चे अन्न से निर्वाह करे। गिरे हुए पत्ते और फल से जीविका करता हुआ, सिद्धि की इच्छा से नाना प्रकार के व्रतों का सेवन करे, चान्द्रायण आदि विविध व्रतों का सेवन करे। चतुराश्रम के मार्ग का सेवन करता हुआ कभी इच्छानुसार रहता हुआ भी 'योग-साधन' करे।

ग्रीष्म में पञ्चाग्नि-तप से, वर्षा-काल में वायु से और शीत-काल में ठण्डे जल में कण्ठ-पर्यन्त खड़े होकर ३।। करोड़ मूल-मन्त्र का जप करने से देवता प्रत्यक्ष आ जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

जो सब साधन से सम्पन्न होते हुए भोगों को छोड़कर शरीर को तपाया करता है, उसने कुछ नहीं पाया—ऐसा नहीं है। वह तो सब कुछ पा लेता है। जैसे मलिन वस्त्र जल के संसर्ग से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार उपवास में प्रसक्त लोगों का हृदय और मन शुद्ध हो जाता है और उन्हें अनन्त सुख मिलता है।

(शेष अगले अङ्क में)

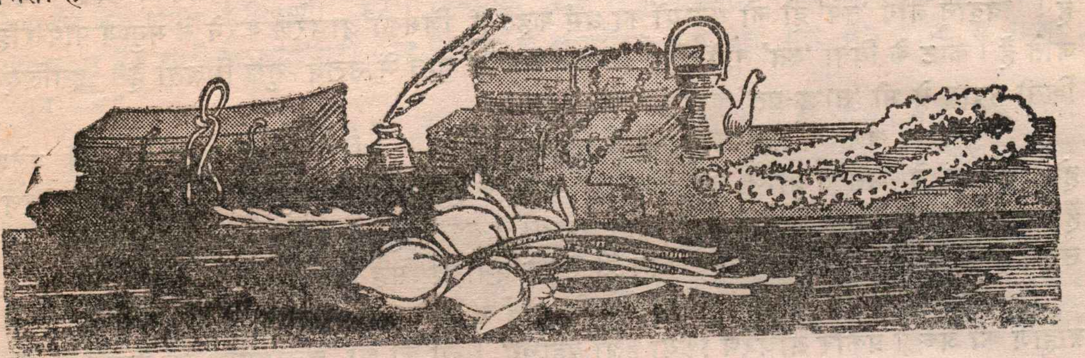

साधनमाला

(भूल-सुधार)

श्री उमाशङ्कर मिश्र वैद्य, छवहीं-गोपालगंज (बिहार) लिखते हैं कि—

"...जुलाई, ९२ अङ्क के पृष्ठ ११९ पर 'दारुण सप्तक'—शत्रु-बाधा-निवारक पक्षिराज स्तोत्र का उल्लेख है, किन्तु एक चत्वारिंशदक्षर (२४) अक्षरों के मन्त्र को नहीं दिया गया है। कृपया उसे प्रकाशित करें! "

खेद है कि उक्त अङ्क के पृष्ठ १२० पर २४ अशुद्ध छप गया है। वहाँ ४१ अक्षरों के मन्त्र का उल्लेख होना चाहिए, जो मन्त्रोद्धार-सहित 'मन्त्र-कोष' के पृष्ठ ७७ पर निम्न प्रकार प्रकाशित है—

ॐ खं खां खं फट् शत्रून् ग्रसि ग्रसि हुं फट् सर्वास्त्र-संहारणाय शरभाय ... य पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा नमः।

साधन-माला

[पौष-अङ्क (जनवरी, ९३) से आगे]

(८४)

श्रीसरस्वती द्वादश-नाम-स्तोत्र

प्रथमं भारती चैव, द्वितीयं तु सरस्वती । तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं कंस-मर्दनी ॥
पञ्चमं तु जगन्माता, षष्ठं चैव तु पार्वती । सप्तमं चैव वाराही, ह्यष्टमं ब्रह्म-चारिणी ॥
नवमं चैव कामाक्षी, दशमं ब्रह्म-पुत्रिका । एकादशं तु लक्ष्मीस्तु, द्वादशं सुर-सुन्दरी ॥
द्वादशैतानि नामानि, त्रि-सन्ध्यं यः पठेन्नरः । तस्य सारस्वतं चैव, षण्मासादेव सिद्ध्यति ॥

१ भारती, २ सरस्वती, ३ शारदा, ४ कंस-मर्दनी, ५ जगन्माता, ६ पार्वती, ७ वाराही, ८ ब्रह्म-चारिणी, ९ कामाक्षी, १० ब्रह्म-पुत्रिका, ११ लक्ष्मी और १२ सुर-सुन्दरी—इन द्वादश (बारह) नामों को जो व्यक्ति पढ़ता है, उसे छः मास में ही वाणी और ज्ञान की सिद्धि हो जाती है ।

(८५)

सिद्ध सारस्वत स्तोत्र

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥

वर्तते निर्मलं ज्ञानं, कुमति-ध्वंस-कारकं । स्तोत्रेणानेन यो भक्त्या, मां स्तुवति सदा नरः ॥

जो व्यक्ति सदैव इस कुमति (दुर्बुद्धि) नाशक स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है, उसे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

त्रि-सन्ध्यं प्रयतो भूत्वा, यः स्तुतिं पठते तथा। तस्य कण्ठे सदा वासं, करिष्यामि न संशयः ।।

जो तीनों सन्ध्याओं में पवित्रता-पूर्वक इस स्तुति का पाठ करता है, मैं सदा उसके कण्ठ में रहती हूँ, इसमें संशय नहीं ।

सिद्ध-सारस्वतं नाम, स्तोत्रं वक्ष्येऽहमुत्तमम् ।।

मैं 'सिद्ध सारस्वत' नामक उत्तम स्तोत्र को कहती हूँ—

उमा च भारती भद्रा, वाणी च विजया जया । वाणी सर्व-गता गौरी, कामाक्षी कमल-प्रिया ।।
सरस्वती च कमला, मातङ्गी चेतना शिवा । क्षेमङ्करी शिवानन्दी, कुण्डली वैष्णवी तथा ।।
ऐन्द्री मधु-मती लक्ष्मीर्गिरिजा शाम्भवाम्बिका । तारा पद्मावती हंसा, पद्म-वासा मनोन्मनी ।।
अपर्णा ललिता देवी, कौमारी कबरी तथा । शाम्भवी सुमुखी नेत्री, त्रिनेत्री विश्व-रूपिणी ।।
आर्या मृडानी ह्रीङ्कारी, साधनी सुमनाश्च हि । सूक्ष्मा पराऽपरा कार्त-स्वर-वती हरि-प्रिया ।।
ज्वाला मालिनिका चर्चा, कन्या च कमलासना । महा-लक्ष्मीर्महा-सिद्धिः स्वधा स्वाहा सुधामयी ।
त्रिलोक-पाविनी भर्त्री, त्रिसन्ध्या त्रिपुरा त्रयी । त्रिशक्तिस्त्रिपुरा दुर्गा, ब्राह्मी त्रैलोक्यमोहिनी ।
त्रिपुष्करा त्रिवर्गदा, त्रिवर्णा त्रिस्वधा-मयी । त्रिगुणा निर्गुणा नित्या, निर्विकारा निरञ्जना ।।
कामाक्षी कामिनी कान्ता, कामदा कल-हंसगा । सहजा कालजा प्रज्ञा, रमा मङ्गल-सुन्दरी ।।
वाग्-विलासा विशालाक्षी, सर्व-विद्या सुमङ्गला । काली महेश्वरी चैव, भैरवी भुवनेश्वरी ।।
वाग्-बीजा च ब्रह्मात्मजा, शारदा कृष्ण-पूजिता । जगन्माता पार्वती च, वाराही ब्रह्म-रूपिणी ।
कामाख्या ब्रह्म-चारिणी, वाग् देवी वरदाऽम्बिका ।।

देवताओं के द्वारा एक सौ आठ नामों से पूजिता वाग्-देवी (सरस्वती) का जो व्यक्ति तीनों सन्ध्याओं में कीर्तन (उक्त नामों का पाठ) करता है, वह सभी सिद्धियाँ पाता है । यह स्तोत्र आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सुख—सम्पत्ति को बढ़ानेवाला, षट्-कर्मों की सिद्धि देनेवाला और तीनों लोकों को मोहित करनेवाला है ।

जो इसका नित्य पाठ करता है—स्वयं बृहस्पति भी उसके कथन के विपरीत कुछ कहने में समर्थ नहीं होते, अन्य लोगों की क्या कथा ! अर्थात् कोई भी साधक के कथन के विपरीत कुछ नहीं कह सकता ।

सिद्ध-सारस्वतं चैव, भवेद् विषय-नाशनम् ।।

साधक को सभी विषयों (ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त आनन्द, लौकिक पदार्थ, मैथुन-सम्बन्धी उपभोग आदि) का नाश करनेवाले निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

।। इति सिद्ध-सारस्वत नाम सरस्वत्यष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रम् ।।

—प्रस्तुत-कर्त्ता : श्रीभैरवानन्दनाथ, १०८ चकरा घाट, सागर (म० प्र०)

(८६)

श्री शिव-शत-नाम

(सम्पूर्ण विधान-सहित)

॥ पूर्व-पीठिका ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

देव-देव महा-देव ! संसारार्णव-तारक ! शिव-लिङ्गार्चनं देव ! कृपया कथय प्रभो !

॥श्री शङ्कर उवाच ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, यन्मत्त्वं परि-पृच्छसि । मम नाम-शतं चैव, कलौ पुण्य-फल-प्रदम् ॥
यस्य स्मरण-मात्रेण, संसारान्मुच्यते नरः ॥
अति गुह्यं महा-पुण्यं, तव स्नेहात् प्रकाशितं । गोपनीयं प्रयत्नेन, न प्रकाश्यं यथा-तथा ॥
मम नाम-परार्धं च, पुरैव कथितं मया । तेषां मध्ये सहस्रं च, सारात् सारं परात् परम् ॥
तत्र-सारं समुद्धृत्य, कथयामि शृणुष्व मे । मम नाम-शतं चैव, कलौ पुण्य-फल-प्रदम् ॥
केवल स्तव-पाठेन, मम तुल्यो न संशयः । पीठादि-न्यास-संयुक्तं, ऋष्यादि-न्यास-पूर्वकम् ॥
देवता-वीज-संयुक्तं, शृणुष्व परमाद्भुतं । नारदोऽस्य ऋषिः प्रोक्तं, छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम ॥
ॐ नमः शिवाय षडक्षरं, महा-वीजं चतुर्वर्ग-फल-प्रदं ।
सर्वाभीष्ट-प्रसिद्ध्यर्थे, विनियोगः प्रकीर्त्तितम् ॥

विनियोग : ॐ अस्य श्रीशिव-शत-नाम-स्तोत्र-मन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, सदा-शिवो देवता, ॐ वीजं, नमः शक्तिः, स्वाहा कीलकम्, धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीनारद-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, सदा-शिव-देवाय नमः हृदये, ॐ वीजाय नमः गुह्ये, नमः शक्त्यै नमः नाभौ, स्वाहा कीलकाय नमः पादयोः, धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास : सां अंगुष्ठाभ्यां नमः, सीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, सूं मध्यमाभ्यां वषट्, सैं अनामिकाभ्यां हुम्, सौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, सः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां फट् ।

अङ्ग-न्यास : सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट्, सैं कवचाय हुम्, सौं नेत्र-त्रयाय वौषट्, सः अस्त्राय फट् ।

ध्यान : ध्यायेन्नित्यं महेशं रजत-गिरि-निभं चारु-चन्द्रावतंसम् ।
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशु-मृग-वराभीति-हस्तं प्रसन्नम् ॥
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममर-गणैः व्याघ्राकृत्तिं वसानम् ।
विश्वाद्यं विश्व-वीजं निखिल-भय-हरं पञ्च-वक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

॥ मूल पाठ ॥

ॐमहा-शून्ये महा-कालो, महा-काली-युतः सदा । देह-मध्ये महेशानि, लिङ्गाकारेण वेष्टितः ॥
मूलाधारे स्वयम्भूश्च कुण्डली-शक्ति-संस्थितः । स्वाधिष्ठाने स्वयं विष्णुः त्रैलोक्य-पालकः सदा ॥
मणिपूरे महा-रुद्रः, सर्व-संहार - कारकः । अनाहते ईश्वरोऽहं, सर्व - देवेन सेवितः ॥
विशुद्धाख्ये षोडशारे, सदा-शिव इति स्मृतः । आज्ञा-चक्रे शिवः साक्षात्, चित्त-रूपेण संस्थितः ॥
सहस्रारे महा पद्मे, त्रिकोण-निलयान्तरे । बिन्दु-रूपो महेशानि ! परमेश्वर ईरितः ॥
बाह्ये रूपे महेशानि ! नाना-रूप-धरोऽस्म्यहं । कैलासे ज्योति रूपश्च, कैलासेश्वर ईरितः ॥
हिमालये महेशानि ! पार्वती-प्राण-वल्लभः । काश्यां विश्वेश्वरश्चैव, बाणेश्वरः तथैव च ॥
शम्भुनाथः चन्द्र-नाथः, चन्द्र-शेखरः पर्वते । आदि-नाथः सिन्धु-तीरे, काम-रूपे वृष-ध्वजः ॥
नैपाले पशुपतिर्नाम, केदारे पारदेश्वरः । हिंगुलायां कृपा-नाथो, रूप-नाथः तदूर्ध्वतः ॥
द्वारकायां हरश्चैव, पुष्करे प्रमथेश्वरः । हरि-द्वारे महेशानि ! गङ्गा-धर इति स्मृतः ॥
कुरु-क्षेत्रे पाण्डवेशो, केदारे दारकेश्वरः । वृन्दारण्ये केशवश्च, गो-कुले गौ-कुलेश्वरः ॥
मथुरायां कंस-नाथो, मिथिलायां धनुर्धरः । अयोध्यायां कीर्ति-वासो, काश्मीरे डमरुनाथः ॥
काञ्ची-नगर-मध्ये तु, मन्नाम त्रिपुरेश्वरः । चित्र-कूटे चन्द-चूडो, योगेन्द्रो विन्दु-पर्वते ॥
बाण-लिङ्गो नर्मदायां, प्रभासे शूल-भृत् सदा । भोज-पुरे भोज-नाथो, गयायां च गदा-धरः ॥
झारि-खण्डे वैद्य-नाथो, चक्रेश्वरः तथैव च । वीर-भूमौ सिद्धि-नाथो, राणे च तारकेश्वरः ॥
घटेश्वरश्च देवेशि ! इलाकार-नदी-तटे । भागीरथी-नदी-तीरे, कपिलेश्वर ईरितः ॥

भद्रेश्वरश्च देवेशि ! कल्याणेशः तथैव च । नकुलेशः कालि-घट्टे, श्रीहट्टे हाटकेश्वरः ।।
अहङ्कोचः वधू-पुरे, जल्पेश्वरस्तथैव च । उत्कले विमला - क्षेत्रे, जगन्नाथोऽहमेव हि ।।
नीलाचलारण्य-मध्ये, भुवनेश्वर ईरितः । रामेश्वरः सेतु-बन्धे, लङ्कायां रावणेश्वरः ।।
रजताचल-मध्ये तु, कुबेरेश्वर ईरितः । लक्ष्मी-कान्तो महेशानि ! सदा श्रीशैल-पर्वते ।।
त्र्यम्बकं गौतमी-तीरे, गो-कर्णे च त्रिलोचनः । बद्रिकाश्रम-मध्ये तु, कपि-नाथेश्वरोऽस्म्यहम् ।।
ईशाने भूत-नाथश्च, गृहे चैव जगद्-गुरुः । अवतारे शङ्करोऽहं, विरूपाक्षः तथैव च ।।
कामिनी-जन-मध्ये तु, कामेश्वरः प्रकीर्तितः । चक्र-मध्ये कुलेशश्च, सलिले वरुणेश्वरः ।।
आशु-तोषो भक्त-मध्ये, शत्रूणां त्रिपुरान्तकः । शिष्य-मध्ये गुरुश्चाहं, तथैव परमं गुरुः ।।
चन्द्र-लोके सोम-नाथो, स्वर्भानुर्भानु-मण्डले । त्रैलोक्ये लोक-नाथोऽहं, रुद्र-लोके महेश्वरः ।।
समुद्र-मथने काले, नील-कण्ठः त्रिलोक-जित् । जम्बू-द्वीपे जगत्-कर्त्ता, शाक-द्वीपे चतुर्भुजः ।।
कुश-द्वीपे कपर्दी च, क्रौञ्च-द्वीपे कपालभृत् । मणि-द्वीपे मीन-नाथः, प्लक्ष-द्वीपे शशि-शेखरः ।।
अहं पुष्कर-द्वीपेषु, पुरुषोत्तम ईरितः । देव-मध्ये वासुदेवः, शुक-मध्ये निरञ्जनः ।।
पुराणे परमेशानि ! व्यासेश्वर ईरितः । आगमे नाग-भट्टश्च, निगमे नाम-रूप-धृक् ।।
सर्वज्ञो ज्योतिषां मध्ये, योगेशो योग-शास्त्रके । नदी-मध्ये नदी-नाथः, नाथ-नाथः तथैव च ।।
राज-राजेश्वरश्चैव, नृपाणां नग-नन्दिनि ! सत्यो ब्रह्म-परं लोके, ह्यनन्तश्च रसातले ।।
आ-ब्रह्म-स्तम्भौ मध्ये तु, लिङ्गरूपोऽस्म्यहं प्रिये ! इति ते कथितं देवि ! मम नाम-शतोत्तमं ।।

॥ फल-श्रुति ॥

पठनात् श्रवणात् चैव, महा-पातक-कोटयः । विलयं यान्ति सहसा, नात्र कार्या विचारणा ।।
अज्ञानिनां ज्ञान-सिद्धिर्ज्ञानिनां परमं धनं । अति-दीन-दरिद्राणां, चिन्तामणि-स्वरूपकम् ।।
योगिनां योग-सिद्धि च, भोगिनां भोग एव च । एक-कालं द्वि-कालं वा, त्रि-कालं वा पठेद्यदि
अथवा रजनी-योगे, विजने शिव-सन्निधौ । यः पठेत् श्रद्धया युक्तो, स सिद्धो नात्र संशयः ।।
सोमवारे प्रदोषे तु, पूजयित्वा स्तवं पठेत् । तस्य सङ्गे महेशानि ! सदा तिष्ठामि नित्यशः ।।
यं यं काममुपस्कृत्य, पठेत् स्तोत्रमनुत्तमम् । तं तं काममवाप्नोति, सत्यं च साधकोत्तमः ।।
जले स्थले चान्तरिक्षे, विपदे पशु-सङ्कटे । वन-मध्ये सभा-मध्ये, राज-द्वारे तथैव च ।।
सर्वाशुभ-विनाशः स्यात्, स्तव-पाठ-प्रसादतः । अहं च जगता ध्येयः, समाधेयस्त्वयैव हि ।।
त्वत्-समो प्रकृतिर्नास्ति, मत्समो नास्ति पुरुषः । तव योनिं समासाद्य, सर्वमेतत् करोम्यहम् ।।
एतद् ज्ञानं महेशानि ! पाखण्डे न वदेत् क्वचित् । मूर्खाय भक्ति-हीनाय, दुष्टाय च दुरात्मने ।।
शिव-भक्ति-विहीनाय, शक्ति-निन्दा-कराय च । प्रकाश्यं महेशानि ! प्रकाशात् शिवहा भवेत् ।।

शिष्याय भक्ति-युक्ताय, शिव-विष्णु-रताय च । अद्वैत-भाव-युक्ताय, देवी-भक्त-पराय च ।।
शत-नाम-महा-स्तोत्रं, तस्मै देयं महेश्वरि ! इति ते कथितं देवि ! मम नाम शतोत्तरम् ।।

हवन-विधि

[धतूर बीज, बेल का गूदा, गो-घृत, कपूर का मिश्रण 'हवन'-सामग्री के रूप में लेकर पीपल की लकड़ी को 'समिधा' में प्रति नाम पर हवन करे । सोम-वार, प्रदोष को 'व्रत' रक्खे । सायं-काल शत-नाम का पाठ करें । निम्न हवन-मन्त्रों के आगे 'ॐ' और अन्त में 'नमः स्वाहा' लगा लें ।]

ॐ महा-शून्याय नमः स्वाहा । महा-कालाय, महा-काली-युताय, देह-मध्ये लिङ्गा-काराय, मूलाधारे स्वयम्भुवे, कुण्डली-शक्ति-संस्थिताय, स्वाधिष्ठाने स्वयं-विष्णवे, त्रैलोक्य-पालकाय, मणिपूरे महा-रुद्राय, सर्व-संहारकाय ।।१०

अनाहते ॐ ईश्वराय नमः स्वाहा । सर्व-देव-सेविताय, विशुद्धाख्ये षोडशारे सदा-शिवाय, आज्ञा-चक्रे साक्षात् शिवाय, चित्त-रूपाय, सहस्रारे महा-पद्मे त्रिकोण-निलयान्तराय, निलयान्तरे विन्दु-रूपाय, परमेश्वराय, कैलासे ज्योति-रूप कैलासेश्वराय, हिमालये पार्वती-प्राण-वल्लभाय ।।२०

काश्यां ॐ विश्वेश्वराय नमः स्वाहा । वाणेश्वराय, चन्द्र-शेखर-पर्वते शम्भुनाथाय, चन्द्र-नाथाय, सिन्धु-तीरे आदि-नाथाय, काम-रूपे वृषभ-ध्वजाय, नैपाले पशु-पतये, केदारे पारदेश्वराय, हिंगुलायां कृपा-नाथाय, रूप-नाथाय ।।३०

द्वारकायां ॐ हराय नमः स्वाहा । पुष्करे प्रमथेश्वराय, हरिद्वारे गङ्गा-धराय, कुरु-क्षेत्रे पाण्डवेशाय, केदारे दारकेश्वराय, वृन्दारण्ये केशवाय, गोकुले गोकुलेश्वराय, मथुरायां कंस-नाथाय, मिथिलायां धनुर्धराय, अयोध्यायां कीर्ति-वासाय ।।४०

काश्मीरे ॐ अमर-नाथाय नमः स्वाहा । काञ्च्यां त्रिपुरेश्वराय, चित्र-कूटे चन्द्र-चूडाय, विन्दु-पर्वते योगेन्द्राय, नर्मदायां वाण-लिङ्गाय, प्रभासे शूल-भृते, भोज-पुरे भोज-नाथाय, गयायां गदा-धराय, झारि-खण्डे वैद्यनाथाय, चक्रेश्वराय ।।५०

वीर-भूमौ ॐ सिद्धि-नाथाय नमः स्वाहा । राणे तारकेश्वराय, इलाकार-नदी-तटे घटेश्वराय, भागीरथी-तटे कपिलेश्वराय, भद्रेश्वराय, कल्याणेशाय, कालि-घट्टे नकु-लेशाय, श्रीहट्टे हाटकेश्वराय, वधू-पुरे अहङ्कोचाय, जल्पेश्वराय ।।६०

उत्कले विमला-क्षेत्रे ॐ जगन्नाथाय नमः स्वाहा। नीलाचले भुवनेश्वराय, सेतु-बन्धे रामेश्वराय, लङ्कायां रावणेश्वराय, रजताचले कुबेरेश्वराय, शैल-पर्वते लक्ष्मी-कान्ताय, गौतमी-तीरे त्र्यम्बकाय, गोकर्णे त्रिलोचनाय, बदरिकाश्रमे कपि-नाथेश्वराय, ईशाने भूत-नाथाय ।।७०

गृहे ॐ जगद्-गुरवे नमः स्वाहा । अवतारे शङ्कराय, विरूपाक्षाय, कामिनी-जन-मध्ये कामेश्वराय, चक्र-मध्ये कुलेशाय, सलिले वरुणेश्वराय, भक्त-मध्ये आशु-तोषाय, शत्रूणां मध्ये त्रिपुरान्तकाय, शिष्य-मध्ये गुरवे, परम-गुरवे ।।८०

चन्द्र-लोके ॐ सोम-नाथाय नमः स्वाहा । भानु-मण्डले स्वर्भानवे, त्रैलोक्ये लोक-नाथाय, रुद्र-लोके महेश्वराय, समुद्र-मथन-काले नील-कण्ठाय, त्रिलोक-जिते, जम्बू-द्वीपे जगत्-कर्त्रे, शाक-द्वीपे चतुर्भुजाय, कुश-द्वीपे कपर्दिने, क्रौञ्च-द्वीपे कपाल-भृते ।।९०

मणि-द्वीपे ॐ मीन-नाथाय नमः स्वाहा । प्लक्ष-द्वीपे शशि-शेखराय, पुष्कर-द्वीपे पुरुषोत्तमाय, देव-मध्ये वासुदेवाय, शुक-मध्ये निरञ्जनाय, पुराणेषु व्यासेश्वराय, आगमे नाग-भट्टाय, निगमे नाग-रूपाय, ज्योतिषां मध्ये सर्वज्ञाय, योग-शास्त्रे योगेशाय ।।१००

नदी-मध्ये ॐ नदी-नाथाय नमः स्वाहा । नाथ-नाथाय, नृपाणां मध्ये राज-राजेश्वराय, ब्रह्म-लोके सत्य-रूपाय, रसातले अनन्ताय, सम्पूर्ण-ब्रह्माण्डे ब्रह्मणे, स्तम्भ-शिवाय, लिङ्गाकाराय ।।१०८

(८७)

श्री विश्वावसु गन्धर्व-राज कवच-स्तोत्रम्

प्रणाम-मन्त्राः —ॐ श्रीगणेशाय नमः ।।१ ॐ श्रीसप्त-शृङ्ग-निवासिन्यै नमः ।।२ ॐ श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय कन्याभिः परिवारिताय नमः ।।३

।। पूर्व-पीठिका ।।

ॐ नमस्कृत्य महा-देवं, सर्वज्ञं परमेश्वरम् ।।

।। श्री पार्वत्युवाच ।।

भगवन् देव-देवेश, शङ्कर परमेश्वर ! कथ्यतां मे परं स्तोत्रं, कवचं कामिनां प्रियम् ।।
जप-मात्रेण यद्वश्यं, कामिनी-कुल-भृत्यवत् । कन्यादि-वश्यमाप्नोति, विवाहाभीष्ट-सिद्धिदम् ।।
भग-दुःखैर्न बाध्येत, सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ।।

।। श्रीईश्वरोवाच ।।

अधुना शृणु देवेशि ! कवचं सर्व-सिद्धिदं । विश्वावसुश्च गन्धर्वो, भक्तानां भग-भाग्यदः ।।
कवचं तस्य परमं, कन्यार्थिणां बिवाहदं । जपेद् वश्यं जगत् सर्वं, स्त्री-वश्यदं क्षणात् ।।
भग-दुःखं न तं याति, भोगे रोग-भयं नहि । लिङ्गोत्कृष्ट-बल-प्राप्तिर्वीर्य-वृद्धि-करं परम् ।।
महदैश्वर्यमवाप्नोति, भग-भाग्यादि-सम्पदाम् । नूतन-सुभगं भुक्त्वा, विश्वावसु-प्रसादतः ।।

विनियोग—ॐ अस्यं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-कवच-स्तोत्र-मन्त्रस्य विश्व-सम्मोहन वाम-देव ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-देवता, ऐं क्लीं बीजं, क्लीं श्रीं शक्तिः, सौः हंसः ब्लूं ग्लौं कीलकं, श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-प्रसादात् भग-भाग्यादि-सिद्धि-पूर्वक-यथोक्त-फल-प्राप्त्यर्थे जपे पाठे विनियोगः ।।

ऋष्यादि-न्यास—ॐ शिरसि विश्व-सम्मोहन-वाम - देव-ऋषये नमः । ॐ मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । ॐ हृदि श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-देवतायै नमः । ॐ गुह्ये ऐं क्लीं बोजाय नमः । ॐ पादयोः क्लीं श्रीं शक्तये नमः । ॐ नाभौ सौः हंसः ब्लूं ग्लौं कीलकाय नमः । ॐ सर्वाङ्गे श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-प्रसादात् भग-भाग्यादि-सिद्धि-पूर्वक-यथोक्त-फल-प्राप्त्यर्थे जपे पाठे विनियोगाय नमः ।।

कर-न्यास—ॐ क्लीं ऐं क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ क्लीं श्रीं गन्धर्व-राजाय क्लीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ क्लीं कन्या-दान-रतोद्यमाय क्लीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लीं धृत-कह्लार-मालाय क्लीं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ क्लीं भक्तानां भग-भाग्यादि-वर-प्रदानाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ क्लीं सौः हंसः ब्लूं ग्लौं क्लीं कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।।

हृदयादि-न्यास—ॐ क्ली ऐं क्लीं हृदयाय नमः । ॐ क्लीं श्रीं गन्धर्व-राजाय क्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्लीं कन्या-दान-रतोद्यमाय क्लीं शिखायै वषट् । ॐ क्लीं धृत-कह्लार-मालाय क्लीं कवचाय हुम् । ॐ क्लीं भक्तानां भग-भाग्यादि-वर-प्रदानाय क्लीं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ क्लीं सौः हंसः ब्लूं ग्लौं क्लीं अस्त्राय फट् ।।

मन्त्र—ॐ क्लीं विश्वावसु-गन्धर्व-राजाय नमः ॐ ऐं क्लीं सौः हंसः सोहं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं सौः ब्लूं ग्लौं क्लीं विश्वावसु-गन्धर्व-राजाय कन्याभिः परिवारिताय कन्या-दान-रतोद्यमाय धृत-कह्लार-मालाय भक्तानां भग-भाग्यादि-वर-प्रदानाय सालङ्कारां सु-रूपां दिव्य-कन्या-रत्नं मे देहि देहि, मद्-विवाहाभीष्टं कुरु-कुरु, सर्व-स्त्री वशमानय, मे लिङ्गोत्कृष्ट-बलं प्रदापय, मत्स्तोकं विवर्धय विवर्धय, भग-लिङ्गानन्दं कुरु-कुरु, भग-लिङ्ग-रोगान् अपहर, मे भग-भाग्यादि-महदैश्वर्यं देहि-देहि, प्रसन्नो मे वरदो भव, ऐं क्लीं सौः हंसः सोहं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं सौः ब्लूं ग्लौं क्लीं नमः स्वाहा ।। **(२०० अक्षर, १९ बार जपें)**

गायत्री-मन्त्र—ॐ क्लीं गन्धर्व-राजाय विद्महे कन्याभिः परिवारिताय धीमहि तन्नो विश्वावसु प्रचोदयात् क्लीं ।। (१० बार जपें)

ध्यान—क्लीं कन्याभिः परिवारितं, सु-विलसत् कह्लार-माला-धृतन्,
स्तुष्टद्याभरण - विभूषितं, सु-नयनं कन्या-प्रदानोद्यमम् ।
भक्तानन्द-करं सुरेश्वर-प्रियं मिथुनासने संस्थितम्,
त्रातुं मे मदनारविन्द-सुमदं विश्वावसुं मे गुरुम् क्लीं ।।

'ध्यान' के बाद, उक्त **'मन्त्र'** को १२ बार और **'गायत्री मन्त्र'** को १० बार जपें ।

।। कवच मूल पाठ ।।

क्लीं कन्याभिः परिवारितं, सु-विलसत् माला-धृतन्—
स्तुष्टद्याभरण-विभूषितं, सु-नयनं कन्या-प्रदानोद्यमम् ।
भक्तानन्द - करं सुरेश्वर - प्रियं मिथुनासने संस्थितं,
त्रातुं मे मदनारविन्द-सुमदं विश्वावसुं मे गुरुम् क्लीं ।।१
क्लीं विश्वावसु शिरः पातु, ललाटे कन्यकाऽधिपः ।
नेत्रौ मे खेचरो रक्षेद्, मुखे विद्या-धरं न्यसेत् क्लीं ।।२
क्लीं नासिकां मे सुगन्धाङ्गो, कपोलौ कामिनी-प्रियः ।
हनुं हंसास्यः पातु, कटौ सिंह - कटि-प्रियः क्लीं ।।३
क्लीं स्कन्धौ महा-बलो रक्षेद्, बाहू मे पद्मिनी-प्रियः ।
करौ कामाग्रजो रक्षेत्, कराग्रे कुच - मर्दनः क्लीं ।।४
क्लीं हृदि कामेश्वरो रक्षेत्, स्तनौ सर्व-स्त्री-काम-जित् ।
कुक्षौ द्वौ रक्षेद् गन्धर्वः, ओष्ठाग्रे मघवार्चितः क्लीं ।।५
क्लीं अमृताहार - सन्तुष्टो, उदरं मे तुदं न्यसेत् ।
नाभिं मे सततं पातु, रम्भाद्यप्सरसः प्रियः क्लीं ।।६
क्लीं कटिं काम-प्रियो रक्षेद्, गुदं मे गन्धर्व-नायकः ।
लिङ्ग-मूले महा-लिङ्गी, लिङ्गाग्रे भग-भाग्य-वान् क्लीं ।।७
क्लीं रेतः रेताचलः पातु, लिङ्गोत्कृष्ट-बल-प्रदः ।
दीर्घ-लिङ्गी च मे लिङ्गं, भोग-काले विवर्धय क्लीं ।।८

क्लीं लिङ्ग-मध्ये च मे पातु, स्थूल-लिङ्गी च वीर्यवान् ।
सदोत्तिष्ठश्च मे लिङ्गो, भग-लिङ्गार्चन-प्रियः क्लीं ।।९

क्लीं वृषणं सततं पातु, भगास्ये वृषण-स्थितः ।
वृषणे मे बलं रक्षेद्, बाला - जङ्घाधः स्थितः क्लीं ।।१०

क्लीं जङ्घ-मध्ये च मे पातु, रम्भादि-जघन-स्थितः ।
जानू मे रक्ष कन्दर्पो, कन्याभिः परिवारितः क्लीं ।।११

क्लीं जानु-मध्ये च मे रक्षेन्नारी-जानु-शिरः-स्थितः ।
पादौ मे शिविकारूढः, कन्यकादि - प्रपूजितः क्लीं ।।१२

क्लीं आपाद-मस्तकं पातु, धृत - कह्लार - मालिका ।
भार्यां मे सततं पातु, सर्व-स्त्रीणां सु-भोगदः क्लीं ।।१३

क्लीं पुत्रान् कामेश्वरो पातु, कन्याः मे कन्यकाऽधिपः ।
धनं गेहं च धान्यं च, दास-दासी-कुलं तथा क्लीं ।।१४

क्लीं विद्याऽऽयुः सबलं रक्षेद्, गन्धर्वाणां शिरोमणिः ।
यशः कीर्तिश्च कान्तिश्च, गजाश्वादि-पशून् तथा क्लीं ।।१५

क्लीं क्षेमारोग्यं च मानं च, पथिषु च बालालये ।
वाते मेघे तडित् - पतिः, रक्षेच्चित्राङ्गदाग्रजः क्लीं ।।१६

क्लीं पञ्च-प्राणादि-देहं च, मनादि - सकलेन्द्रियान् ।
धर्म - कामार्थ - मोक्षं च, रक्षां देहि सुरेश्वर ! क्लीं ।।१७

क्लीं रक्ष मे जगतस्सर्वं, द्वीपादि - नव - खण्डकम् ।
दश-दिक्षु च मे रक्षेद्, विश्वावसुः जगतः प्रभुः क्लीं ।।१८

क्लीं सालङ्कारां सु-रूपां च, कन्या-रत्नं च देहि मे ।
विवाहं च प्रद क्षिप्रं, भग-भाग्यादि-सिद्धिदः क्लीं ।।१९

क्लीं रम्भादि-कामिनी-वारस्त्रियो जाति- कुलाङ्गनाः ।
वश्यं देहि त्वं मे सिद्धिं, गन्धर्वाणां गुरूत्तमः क्लीं ।।२०

क्लीं भग-भाग्यादि - सिद्धिं मे, देहि सर्व-सुखोत्सवः ।
धर्म-कामार्थ - मोक्षं च, देहि विश्वावसु प्रभो ! क्लीं ।।२१

।। फल-श्रुति ।।

इत्येतत् कवचं दिव्यं, साक्षाद् वज्रोपमं परम् ।
भक्त्या पठति यो नित्यं, तस्य कश्चिद्भयं नहि ।।१
एक-विंशति-श्लोकांश्च, काम - राज - पुटं जपेत् ।
वश्यं तस्य जगत् सर्वं, सर्व-स्त्री - भुवन-त्रयम् ।।२
सालङ्कारां सु-रूपां च, कन्यां दिव्यां लभेन्नरः ।
विवाहं च भवेत् तस्य, दुःख-दारिद्र्य तं नहि ।।३
पुत्र-पौत्रादि-युक्तश्च, स गण्यः श्रीमतां भवेत् ।
भार्या - प्रीतिर्विवर्धन्ति, वर्धनं सर्व-सम्पदाम् ।।४
गजाश्वादि - धनं धान्यं, शिबिकां च बलं तथा ।
महाऽऽनन्दमवाप्नोति, कवचस्य पाठाद् ध्रुवम् ।।५
देशं पुरं च दुर्गं च, भूषादि - छत्र-चामरम् ।
यशः कीर्तिश्च कान्तिश्च, लभेद् गन्धर्व-सेवनात् ।।६
राज-मान्यादि-सम्मानं, बुद्धि - विद्या - विवर्धनम् ।
हेम-रत्नादि-वस्त्रं च, कोश-वृद्धिस्तु जायताम् ।।७

यस्य गन्धर्व-सेवा वै, दैत्य-दानव-राक्षसैः । विद्याधरैः किंपुरुषैः, चण्डिकाद्या भयं नहि ।।
महा-मारी च कृत्यादि, वेतालैश्चैव भैरवैः । डाकिनी-शाकिनी-भूतैर्न भयं कवचं पठेत् ।।
प्रयोगादि-महा-मन्त्र-सम्पदो क्रूर-योगिनाम् । राज-द्वारे श्मशाने च, साधकस्य भयं नहि ।।
पथि दुर्गे जलेऽरण्ये, विवादे नृप-दर्शने । दिवा-रात्रौ गिरौ मेघे, भयं नास्ति जगत्-त्रये ।।
भोजने शयने भोगे, सभायां तस्करेषु च । दुःस्वप्ने च भयं नास्ति, विश्वावसु-प्रसादतः ।।
गजोष्ट्रादि-नखि-शृङ्गि, व्याघ्रादि-वन-देवताः । खेचरा भूचरादीनां, न भयं कवचं पठेत् ।।
रणे रोगाः न तं यान्ति, अस्त्र-शस्त्र-समाकुले । साधकस्य भयं नास्ति, सदेदं कवचं पठेत् ।।
रक्त-द्रव्याणि सर्वाणि, लिखितं यस्तु धारयेत् । सभा-राज-पतिर्वश्यं, वश्याः सर्व-कुलाङ्गनाः ।।
रंभादि-कामिनीः सर्वाः, वश्याः तस्य न संशयः । मदन-पुटितं जप्त्वा जप्त्वा च भग-मालिनीं ।।
भग-भाग्यादि-सिद्धिश्च, वृद्धिः तस्य सदा भवेत् । बाला-त्रिपुर-सुन्दर्या, पुटितं च पठेन्नरः ।।
सालङ्कारा सुरूपा च, कन्या भार्यास्तु जायतां । बाला प्रौढ़ा च या भार्या, सर्वा-स्त्री च पतिव्रता
गणिका नृप-भार्यादि, जपाद्वश्यं च जायताम् । शत-द्वयोः वर्णकानां, मन्त्रं तु प्रजपेन्नरः ।।

वश्यं तस्य जगत्-सर्वं, नर-नारी-स्व-भृत्य-वत् । ध्यानादौ च जपेद्भानुं, ध्यानान्ते द्वादशंजपेत् ।।
गायत्री दश-वारं च, जपेद् वा कवच पठेत् । युग्म-स्तोत्रं पठेन्नित्यं, बाला-त्रिपुरा-सुन्दरीम् ।।
कामजं वंश-गोपालं, सन्तानार्थे सदा जपेत् । गणेशस्यालये जप्त्वा, शिवाले भैरवालये ।।
तड़ागे वा सरित्-तीरे, पर्वते वा महा-वने । जप्त्वा पुष्प-वटी-दिव्ये, कदली-कयलालये ।।
गुरोरभिमुखं जप्त्वा, न जपेत् कण्टकानने । मांसोच्छिष्ट-मुखे जप्त्वा, मदिरा नाग-वल्लिका ।।
जप्त्वा सिद्धिमवाप्नोति, भग-भाग्यादि-सम्पदां । देहान्ते स्वर्गमाप्नोति, भुक्त्वा स्वर्गाङ्गनासदा
कल्पान्ते मोक्षमाप्नोति, कैवलं पदवीं न्यसेत् । न देयं यस्य कस्यापि, कवचं दिव्यं पार्वति ।।
गुरु-भक्ताय दातव्यं, काम-मार्ग-रताय च । देयं कौल-कुले देवि ! सर्व-सिद्धिस्तु जायताम् ।।
भग-भाग्यादि-सिद्धिश्च, सन्तानो सम्पदोत्सवः । विश्वावसु प्रसन्नो च, सिद्धि-वृद्धिर्दिनेदिने ।।
।। इति श्रीरुद्र-यामले महा-तन्त्र-राजे श्रीपार्वतीश्वर-सम्वादे श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-कवच स्तोत्रम् ।।

(८८)

लक्ष्मी की कृपा-प्रप्ति का प्रयोग

य आश्विन-मासि च शुक्ल-पक्षे, रमोत्सवे सन्निहितैक-भक्त्या ।
पठेत् तथैकोत्तर-वार-वृद्धया, लभेत् स सौवर्ण-मयीं सु-वृष्टिम् ।।

अर्थ : जो आश्विन के मास में, शुक्ल पक्ष में रमोत्सव के समय में एक - निष्ठ होकर प्रतिदिन एक पाठ को वृद्धि करते हुए पाठ करता है, वह स्वर्ण-मयी सुन्दर वृष्टि को प्राप्त करता है।

व्याख्या : 'रमोत्सव' अर्थात् भगवती लक्ष्मी का यथा-शक्ति पूजनोत्सव करे। उस उत्सव के साथ ही पाठ करना चाहिए। प्रति-दिन एक पाठ की वृद्धि का आशय यह है कि पहले दिन एक पाठ, दूसरे दिन दो पाठ, तीसरे दिन तीन—इसी प्रकार नित्य एक पाठ बढ़ाता जाय।

य एक भक्तोऽन्वहमेक-वर्षं, विशुद्ध-धी सप्तति-वार-जापी ।
स मन्द-भाग्योऽपि उमा-कटाक्षाद् भवेत् सहस्राक्ष-शताधिक-श्री ।।

अर्थ : जो शुद्ध मनवाला एक वर्ष तक, नित्य एक बार भोजन करते हुए, सत्तर बार जप करता है, वह अल्प-भाग्य होने पर भी भगवती की कृपा - दृष्टि से इन्द्र से भी शताधिक श्री को प्राप्त करता है।

व्याख्या : एक बार भोजन से तात्पर्य है कि प्रति-दिन पूर्वाह्न या अपराह्न में एक ही बार भोजन करना हे, दो बार नहीं। ✽✽

ईश्वर- प्राप्ति का मार्ग

☐ किसी भी एक विन्दु को 'ईश्वर'- रूप मान कर, उसमं 'ईश्वर' के सब गुणों की, जैसे 'ईश्वर' अनन्त है, दयालु है, समदृष्टिवाला है, शान्त, सर्वज्ञ और सर्व- व्यापक है इत्यादि अनेक गुणों की स्थापना करके, उसका ध्यान करने से प्रभु के प्रति प्रेम जागता है। यहाँ तक कि बिन्दु में गुणों की भावना भरते - भरते ही चित्त एकाग्र होने लग जाता है। इस प्रकार चिन्तन करते - करते अपना 'मन'— ईश्वर के साथ एकाकार हो जाएगा और किसी दिन ईश्वर के सब गुण अपने में आ जाएँगे और हम भी 'ईश्वर' बन जाएँगे।

'ईश्वर' व्यक्ति - वाचक नहीं, गुण - वाचक है। जिसमें 'ईश्वर' के जैसे गुण हों, वह 'ईश्वर' कहा जा सकता है।

☐ **भगवान् श्रीकृष्ण** ने **'गीता'** में कहा है कि इन्द्रियों को, उनके विषय के स्पर्श से जो ठण्डा - गर्म, हर्ष - शोक, सुख - दुःख आदि का अनुभव होता है, वह अनित्य और आने - जानेवाला है, इसलिए उनके सहन करने का अभ्यास करना चाहिए। दुःख या शोक में खिन्न न होना और धैर्य को न छोड़ना तथा सुख या आनन्द में फूल न जाना चाहिए क्योंकि सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख — एक दूसरे के पीछे लगा ही रहता है।

☐ एक फकीर था। वह एक दिन रास्ते में पुकारता जा रहा था — 'है कोई एक लाख रुपये देकर मेरी बात सुननेवाला ?' पर ऐसा कौन मिलता ! इसी प्रकार चिल्लाते - चिल्लाते जब उसे बहुत दिन हो गए, तब एक सेठ जी के मन में आया कि 'फकीर की बात में कुछ रहस्य अवश्य होगा। इसलिए उसकी बात सुननी चाहिए।' ऐसा सोचकर उन्होंने फकीर को बुलाया और उससे वह बात पूछी। फकीर ने पहले एक लाख रुपए ले लिए और कहा कि **'न वे दिन रहे, न ये दिन रहेंगे।'** बेचारे सेठ ने ऐसी छोटी-सी बात के लिए लाख रुपए दिए थे। इसलिए उसने चारों तरफ दीवारों पर उक्त बात लिखा दी। यहाँ तक कि अपने पहनने के कपड़े पर भी उसे लिखवा दिया।

बहुत दिनों के बाद सेठ का राजा से कुछ झगड़ा हो गया। राजा ने उसकी धन - दौलत सब ले ली और उसको जीते ही जला देने का हुक्म दिया। सेठ बेचारा रोता हुआ बन्दी - खाने में गया। वहाँ उसने अपने कपड़े पर लिखी हुई उक्त बात देखी और सोचा कि **मेरा पहले का दिन नहीं रहा, तो यह दुःख का दिन भी नहीं रहेगा।** यह विचार आने से वह हर्ष से नाच उठा और हँसने लगा। पहरेदारों को यह देखकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने राजा से जाकर उसके आनन्दित होने की बात कही।

राजा ने सेठजी को बुलाकर कारण पूछा। सेठजी ने फकीर की बात राजा को सुनाई। अपने कपड़े पर जो लिखा था, वह भी दिखाया और कहा कि 'इसलिए मेरे मन में खुशी हुई और मैं हँस पड़ा।' यह बात सुनकर राजा के सिर में बिजली की तरह यह विचार कौंध गया कि 'सम्भव है मेरे भी ये सुख - चैन के दिन न रहें और दुःख भोगना पड़े।' उन्होंने सेठ जी को तुरन्त मुक्त कर दिया और उसकी धन - दौलत भी लौटा दी। उक्त दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि मन को समत्व में रखने का अभ्यास करना चाहिए।

रजि० सं० ३२९८१/५७ **FEBRUARY** रजि०सं० ए०डी० ९६

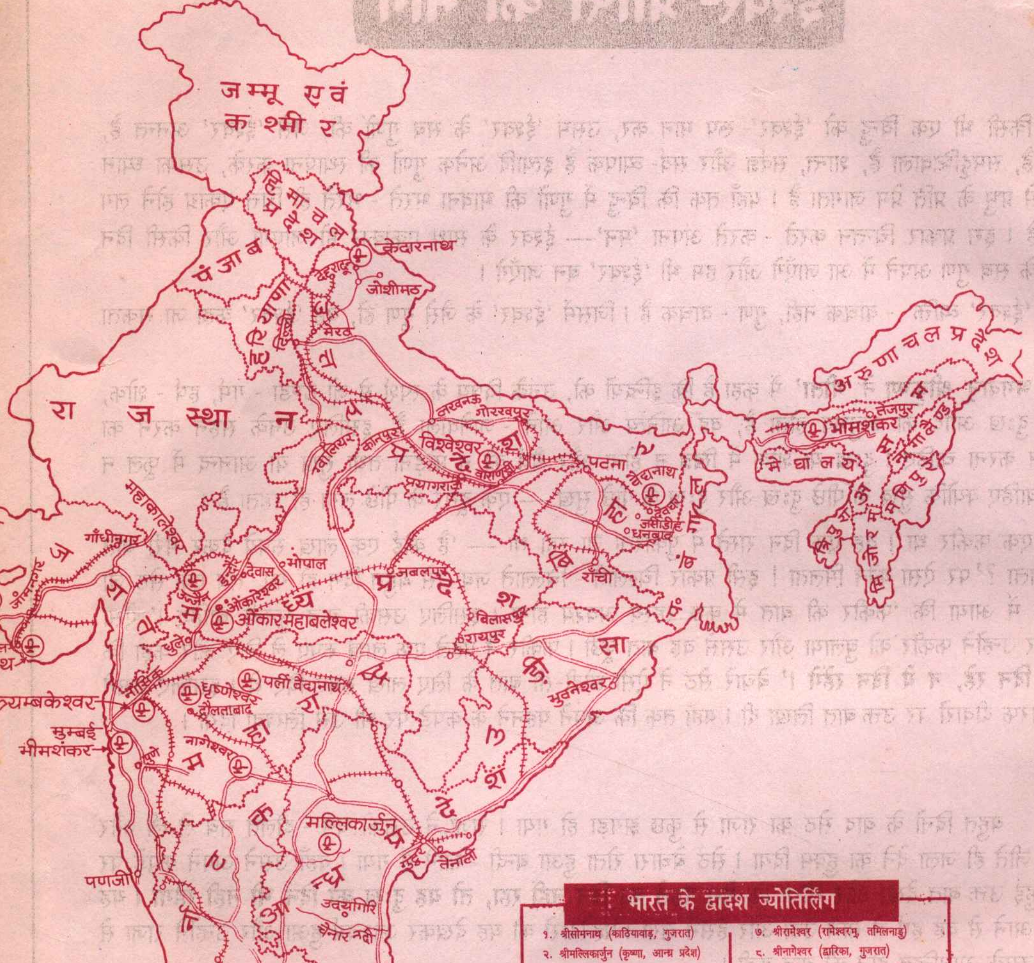

भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंग

१. श्रीसोमनाथ (काठियावाड़, गुजरात)	७. श्रीरामेश्वर (रामेश्वरम्, तमिलनाडु)
२. श्रीमल्लिकार्जुन (कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश)	८. श्रीनागेश्वर (द्वारिका, गुजरात)
३. श्री महा-काल (उज्जैन, मध्य प्रदेश)	९. श्रीविश्वेश्वर (वाराणसी, उत्तर प्रदेश)
४. श्री ओंकारेश्वर (मालवा, मध्य प्रदेश)	१०. श्रीत्र्यम्बकेश्वर (नासिक, महाराष्ट्र)
५. श्री बैद्यनाथ (देवघर, बिहार)	११. श्रीकेदार नाथ (केदारनाथ, उत्तर प्रदेश)
६. श्रीभीमशंकर (महाराष्ट्र)	१२. श्रीघुष्मेश्वर (दौलताबाद, महाराष्ट्र)

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६